ऋग्वेदः

१. हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये। १.२२.५
२. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्। १.२२.२०
३. न दुरुक्ताय स्पृहयेत्। १.४१.९
४. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता। १.९०.७
५. सत्यं तातान सूर्यः। १.१०५.१२
६. विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। १.११३.१
७. उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति।
१.११३.१६
८. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। १.११५.१

---

१. मैं हाथ में सुवर्ण लिए हुए सविता का आवाहन रक्षा के लिए करता हूँ।
२. विद्वान् आकाश में निबद्ध दृष्टि की भाँति विष्णु के उस परम पद को सदा देखते हैं।
३. अपशब्द का अवसर नहीं आने देना चाहिए।
४. हमारी रात्रि और उषायें मधुर हों, पृथ्वीलोक मधुमान् हो, पिता के तुल्य रक्षक आकाश मधुर हो।
५. सूर्य ने सत्त्व को फैलाया है।
६. इस गाँव में सब कुछ पुष्ट और स्वस्थ है।
७. उठो। प्राण सक्रिय हुआ। अन्धकार गया। ज्योति आ गई।
८. सूर्य जङ्गम और स्थावर की आत्मा है।

९. उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायु-
रस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम्। १.११६.२५

१०. दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते।
दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥ १.११२.६

११. माता पृथिवी महीयम्। १.१६४.३३

१२. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।
अग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः। १.१६४.४६

१३. विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवाः। २.२४.१६

१४. नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्
य आदित्यानां भवति प्रणीतौ। २.२७.१३

१५. मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परिष्ठात्। ३.१५.६

१६. नावाजिनं वाजिना हासयन्ति।
न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति। ३.५३.२३

---

९. देखते हुए और दीर्घ आयु भोगते हुए वृद्धावस्था में वैसे ही प्रवेश करूँ जैसे अपने घर में।

१०. दक्षिणा देनेवाले (दानी) अमृत पद पाते हैं। वे दीर्घायु प्राप्त करते हैं।

११. यह बड़ी पृथ्वी हमारी माता है।

१२. एक सत् को विद्वान् अनेक नामों से कहते हैं--अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि।

१३. वह सब अच्छा है, जिसकी देवता रक्षा करते हैं।

१४. जो आदित्यों का अनुसरण करता है, उसे दूर या निकट से शत्रु मार नहीं सकते।

१५. मानव की दुर्मति हमें न घेरे।

१६. जो तेज घोड़ा नहीं है, उसे तेज घोड़े की समता में नहीं लाना चाहिए। लोग गदहे को घोड़े के आगे नहीं ले जाते।

१७. अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे।
नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ। ४.१६.४

१८. बहूनि मे अकृता कर्त्वानि।
युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै। ४.१८.२

१९. न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। ४.३३.११

२०. निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु। ५.२.६

२१. विद्वान् पथः पुरएत ऋजु नेषति। ५.४६.१

२२. स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। ५.५१.१५

२३. उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी।
अदेवत्रादराधसः। ५.६१.६

२४. पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं
कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः। ६.४७.१५

---

१७. बलिष्ठ इन्द्र ने मनुष्यों के देखने के लिए घने क्लेशकर अन्धकार को दूर किया है।

१८. मुझे अनेक ऐसे कार्य करने हैं, जो किये नहीं गये—किसी से युद्ध करना है तो किसी से सीखना है।

१९. परिश्रमी को छोड़कर (किसी अन्य की) सहायता देवता नहीं करते हैं।

२०. (समाज में) निन्दक लोग निन्दित हों।

२१. विद्वान् पुरोगामी होकर सरल पथ से मनुष्यों का नेतृत्व करे।

२२. सूर्य और चन्द्र की भाँति सुख से मार्ग पर चलें।

२३. जो देवों की पूजा नहीं करता है, यज्ञ नहीं करता है, उस पुरुष से स्त्री शशीयसी अच्छी है।

२४. चलते समय जैसे एक के पीछे दूसरे पैर को बढ़ाया जाता है, वैसे ही इन्द्र अपनी शक्ति से पीछे रहने वालों को आगे बढ़ा देते हैं।

२५. नम इदुग्रं नम आ विवासे।
नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्। ६.५१.८

२६. गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं
दिवि प्रेङ्खं हिरण्मयं शुभे कम्। ७.८७.५

२७. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्।
७.१०४.१२

२८. यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्। ८.२८.४

२९. अस्ति रत्नमनागसः। ८.६७.७

३०. मज्जन्त्यविचेतसः। ९.६४.२१

३१. न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति। १०.१०.८

३२. न देवानामति व्रतं शतात्मा च न जीवति। १०.३३.९

---

२५. नमस्कार ही सबल वस्तु है। नमस्कार चाहता हूँ। नमस्कार ने पृथ्वी और स्वर्ग को धारण किया है।

२६. राजा वरुण ने आकाश में दीप्ति के लिए स्वर्ण के झूले की भाँति इस सूर्य का निर्माण किया है।

२७. विद्वान् को सत्य और असत्य विदित है, जो परस्पर प्रतिस्पर्धा करने वाले वाक्य हैं। सोम उनमें से सत्य और सरलतम को पुरस्कृत करते हैं और असत्य की हिंसा करते हैं।

२८. देवता जैसा चाहते हैं, वैसा होता है।

२९. निष्पाप (लोगों) को रत्न (मिलकर रहता) है।

३०. ज्ञान रहित डूबते हैं।

३१. देवताओं के गुप्तचर, जो यहाँ विचरण करते हैं, कभी रुकते नहीं और न कभी पलक मारते हैं।

३२. सौ आत्मा (जीवन शक्तियों) वाला भी देवताओं के विधान के विरुद्ध नहीं जी सकता।

३३. आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे। १०.५७.४

३४. यस्तित्याज सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति
न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्। १०.७१.६

३५. सत्येनोत्तभिता भूमिः। १०.८५.१ ✓

३६. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। १०.९०.१ ✓

३७. पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्। १०.९०.२ ✓

३८. न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददु-
रुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्य-
त्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते। १०.११७.१

---

३३. तुम्हारा मन फिर ज्ञान, बल, जीवन और सूर्यदर्शन के लिए प्रवृत्त हो।

३४. साथ रहने वाले मित्र की भाँति वेद को जो छोड़ देता है, उसकी वाणी में सफलता नहीं होती है। वह जो सुनता है, व्यर्थ सुनता है। वह पुण्य-पथ को नहीं जानता।

३५. सत्य से भूमि प्रतिष्ठित है।

३६. पुरुष (ब्रह्म) के सहस्र शीर्ष, सहस्र आँख और सहस्र पाद हैं।

३७. परमेश्वर ये सब हैं—जो उत्पन्न हुआ और जो भविष्य में जन्म लेने वाला है।

३८. देवताओं ने भूख (भूखे) के लिए मृत्यु का विधान तो नहीं ही बनाया और खाने वाले के पास भी तो मृत्यु जाती है। देते हुए पुरुषों का धन क्षीण नहीं होता। दान न देने वाले पुरुष को क्षमा करने वाला नहीं मिलता।

३९. न स सखा यो न ददाति सख्ये। १०.११७.४

४०. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी॥ १०.११७.६

४१. अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत्।
मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हितः॥ १०.१३६.४

४२. सं गच्छध्वं सं वदध्वं
सं वो मनांसि जानताम्। १०.१९१.२

यजुर्वेदः

४३. परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज। ४.२८

४४. श्रद्धया सत्यमाप्यते। १९.३०

---

३९. वह मित्र नहीं है, जो साथी को नहीं देता है।

४०. अनुदार का अन्न पाना व्यर्थ है। सच कहता हूँ, यह उसका वध ही है। वह न तो अर्यमा की सेवा करता है और न साथी का पोषण करता है। जो अकेले खाता है, वह पापमय है।

४१. मुनि आकाश मार्ग से उड़ते हैं, सब कुछ देखते हैं। वे सभी देवताओं के लाभ के लिए उनके सखा रूप में प्रतिष्ठित हैं।

४२. साथ चलो, साथ बोलो। तुम्हारे मन साथ विचार करें।

---

४३. हे अग्नि, मुझे दुश्चरित से बचाइये, सुचरित में लगाइये।

४४. श्रद्धा से सत्य मिलता है।

४५. निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।। २२.२२
४६. अश्मा भवति नस्तनूः । २९.४९
४७. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ।। ३०.३
४८. भूत्यै जागरणम् । अभूत्यै स्वपनम् । ३०.१७
४९. तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । ३१.१८
५०. तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु । ३४.१
५१. मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । ३६.१८
५२. अदीनाः स्याम शरदः शतम् । भूयश्च शरदः शतात् । ३६.२४
५३. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।। ४०.१

---

४५. हमारी आवश्यकता के अनुसार पानी बरसे ।
४६. हमारे शरीर पत्थर (के समान दृढ़) हों ।
४७. हे देव सवितः ! सभी पापाचारों को दूर करें । जो अच्छा है, उसे हम लोगों के लिए लायें ।
४८. जागना वैभव के लिए है । सोना पतन के लिए है ।
४९. उसी (भगवान्) को जानकर मृत्यु के परे जाता है । इस गति के लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।
५०. मेरा मन कल्याणमय संकल्पों वाला हो ।
५१. मैं मित्र की दृष्टि से सभी प्राणियों को देखूँ ।
५२. सौ वर्ष तक हम उदार रहें, सौ वर्षों से आगे भी ।
५३. जगती अर्थात् पृथ्वी पर जो कुछ यह सब जगत् अर्थात् नश्वर स्वभाव की वस्तुएँ हैं, वे सभी परमेश्वर से व्याप्त हैं । त्याग-भाव से उनका भोग करना चाहिए । किसी के धन की चाह न करो ।

५४. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।। ४०.२
५५. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।। ४०.१७

अथर्ववेदः

५६. यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।। २.१५.३

५७. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।। ३.३०.३

५८. सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति।। ९.६.२५

५९. कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति
यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति। ९.६.३५

६०. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।। ११.५.३

---

५४. यहाँ काम करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे।

५५. स्वर्णमय पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है।

---

५६. जैसे सूर्य और चन्द्र न डरते हैं और न डराते हैं, उसी प्रकार मेरे प्राण! डरो मत।

५७. भाई (अपने) भाई से, बहिन (अपनी) बहिन से द्वेष न करे। सौहार्द वाले समान व्रत वाले होकर भद्र भाव से वचन बोलो।

५८. वह पुरुष निष्पाप हो जाता है. जिसका अन्न (दूसरे) खाते हैं।

५९. वह (पुरुष) घर की कीर्ति और यश को खा जाता है, जो अतिथि से पहले खाता है।

६०. उपनयन करते हुए आचार्य ब्रह्मचारी को गर्भ की भाँति धारण करता है।

६१. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ ११.५.१७

६२. माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। १२.१.१२

६३. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं
पृथिवी यथौकसम्। १२.१.४५

६४. यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि। १७.१.७

ऐतरेयब्राह्मणम्

६५. यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति। १.५

६६. अशनाया वै पाप्माऽमतिः। २.२

६७. परोक्षप्रिया इव हि देवाः॥ ३.११

६८. परिमितं वै भूतम्। अपरिमितं भव्यम्। ४.६

---

६१. ब्रह्मचर्य से, तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी की इच्छा करता है।

६२. भूमि माता है। मैं पृथिवी का पुत्र हूँ।

६३. घर की भाँति पृथिवी अनेक भाषा बोलनेवाले, अनेक धर्मोंवाले लोगों को धारण करती है।

६४. जिन्हें मैं देखता हूँ और जिन्हें नहीं देखता हूँ, उन सब के प्रति मुझ में सुमति उत्पन्न करें।

----

६५. यहाँ जिस के अधिकतम अन्न होता है, वह लोक में उच्चतम विराजमान होता है।

६६. भूख ही पापबुद्धि है।

६७. देवता परोक्षप्रिय होते हैं।

६८. जो हो चुका है, वह ससीम है। जिसे होना है, वह असीम है।

६९. स वै गुरुभारः शृणाति॥ ४.१२

७०. सर्वस्य वै गावः प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गताः॥ ४.१७

७१. श्रद्धया सत्येन मिथुनेन स्वर्गांल्लोकान् जयति। ७.१०

७२. नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति॥ ७.१५

७३. कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्। ७.१५

७४. इन्द्र इच्चरतः सखा। ७.१५

शतपथब्राह्मणम्

७५. सत्यमेव देवाः १.१.१.४

७६. मध्यसभयम्। १.१.२.२३

७७. संग्रामो वै क्रूरम्। संग्रामे हि क्रूरं क्रियते। १.२.५.१९

७८. वाचो वा इदं सर्वं प्रभवति। १.३.२.१६

---

६९. गुरु भार हानि करता है।

७०. गायें सब के प्रेम की वस्तु हैं, सब के लिए सुन्दर हैं।

७१. श्रद्धा और सत्य के जोड़े से स्वर्ग लोकों को जीत लेता है।

७२. श्रम न करनेवाले की शोभा नहीं रहती।

७३. सोते हुए (पुरुष के लिए) कलियुग रहता है, जँभाई लेते हुए द्वापर होता है, उठते हुए त्रेता और काम में लग जाते हुए सत्ययुग होता है।

७४. इन्द्र परिश्रमी (लोगों) की सहायता करता है।

---

७५. सत्य ही देवता है।

७६. मध्यम मार्ग भयरहित है।

७७. युद्ध क्रूर होता है। युद्ध में क्रूर काम किये जाते हैं।

७८. वाणी से ही यह सब उत्पन्न होता है।

७९. सर्वं वा इदमेति च प्रेति च। १.४.१.६
८०. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। १.७.१.५
८१. मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। १.८.१.३
८२. न श्वः श्वमुपासीत। को हि मनुष्यस्य श्वो वेद। २.१.३.९
८३. अद्धा हि तद् यदद्य। अनद्धा हि तद् यच्छ्वः। २.३.१.२८
८४. अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः॥ २.२.२.६
८५. अद्धा हि तद् यद् भूतम्। अनद्धा हि तद् यद् भविष्यत्॥ २.३.१.२५
८६. पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम्। २.५.१.१
८७. अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। तेन पूतिरन्तरतः॥ ३.१.२.१०
८८. द्वितीयवान् हि वीर्यवान्॥ ३.७.३.८

---

७९. जो सब आता है, वह जाता भी है।
८०. यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।
८१. मछली ही मछली को निगलती है।
८२. कल के भरोसे मत बैठो। मनुष्य का कल किसे ज्ञात है।
८३. आज निश्चित है। जो कल है, वह अनिश्चित है।
८४. जो ब्राह्मण वेद सुनते और अध्ययन करते हैं, वे मनुष्यों में देवता हैं।
८५. जो हो चुका है, वह निश्चित है। जो होगा उसकी कौन जाने?
८६. पुरुष प्रजापति से निकटतम है।
८७. वह पुरुष अपवित्र है, जो झूठ बोलता है। इसके कारण उसके भीतर से दुर्गन्ध उत्पन्न होती है।

८८. साथी वाला ही बली है।

८९. त्रयी वै विद्या ऋचो यजुंषि सामानि ।। ४.६.७.१

९०. पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः ।। ५.१.१.१

९१. यावज्जायां न विन्दते...असर्वो हि तावद्भवति ।। ५.२.१.१०

९२. न ह्ययुक्तेन मनसा किञ्चन सम्प्रति शक्नोति कर्तुम् । ६.३.१.१४

९३. श्रीर्वै राष्ट्रम् । ६.७.३.७

९४. न वै कामानामतिरिक्तमस्ति ।। ८.७.२.१९

९५. ते ह ते घोरतरा अशान्ततरा य उभयतो नमस्काराः ।। ९.१.१.२०

उपनिषदः

९६. पुरुषो वाव सुकृतम् । ऐतरेय० २.३

९७. असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय । बृहदारण्यक० १.३.२८

---

८९. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद—यही त्रयी विद्या है।

९०. अभिमान ही पराभव का द्वार है।

९१. जब तक पत्नी नहीं पाता, तब तक अपूर्ण रहता है।

९२. अयुक्त मन से कुछ भी करना असम्भव है।

९३. श्री ही राष्ट्र है।

९४. कामनाओं के बाहर कुछ भी नहीं है।

९५. दोनों ओर के नमस्कार घोरतम हैं, अशान्ततर हैं।

---

९६. निश्चय ही पुरुष सुन्दर रचना है।

९७. मुझे असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर और
मृत्यु से अमरता की ओर ले जाओ।

९८. य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति।
बृह० १.४.८

९९. न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति।
आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति।। बृह० २.४.५

१००. यथा वृक्षो वनस्पतिः तथैव पुरुषोऽमृषा। बृह० ३.९.२८

१०१. काममय एवायं पुरुषः। बृह० ४.४.६

१०२. ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति । छान्दोग्य० २.१३.१

१०३. न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।
छा० ३.६.१

१०४. सर्वं खल्विदं ब्रह्म । छा० ३.१४.१

१०५. यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते।
एवं सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासते।। छा० ५.२४.५

१०६. सर्वाः प्रजाः सत आगत्य न विदुः सत आगच्छामहे।
छा० ६.१०.२

---

९८. जो आत्मा की ही प्रिय रूप में उपासना करता है, उसके लिए कोई नश्वर वस्तु प्रिय नहीं होती।

९९. अरे भाई, धन के लिए धन प्रिय नहीं होता। आत्मा के लिए धन प्रिय होता है।

१००. जैसे वृक्ष वनस्पति है, वैसे ही पुरुष सत्य है।

१०१. यह पुरुष इच्छाओं का ही बना है।

१०२. ब्रह्म में अपने को प्रतिष्ठित कर देनेवाला अमरता प्राप्त करता है।

१०३. देवता न तो खाते हैं, न पीते हैं। केवल अमृत को देखकर तृप्त रहते हैं।

१०४. यह सारा ब्रह्म ही है।

१०५. जैसे भूखे बालक माता की शरण जाते हैं, वैसे ही सभी प्राणी अग्निहोत्र की शरण जाते हैं।

१०६. सभी लोग सत् से उत्पन्न हैं, किन्तु वे यह जानते नहीं।

१०७. विज्ञानं वाव ध्यानाद् भूयः।
बलं वाव विज्ञानाद् भूयः।। छा० ७.७.८

१०८. यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।
भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः । छा० ७.२३

१०९. आत्मन एवेदं सर्वम्। छा० ७.२६.१

११०. आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः । छा० ७.२६.२

१११. अन्नात्पुरुषः। अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । तैत्तिरीय०

११२. शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा ।
कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । तै० शिक्षा ४.१

११३. अन्नं बहु कुर्वीत । तैत्ति० भृगुवल्ली ९

११४ आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्। केन० २.४

११५.. तेजस्वि नावधीतमस्तु। कठ० उ०

११६. न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। कठ० १.२७

---

१०७. विज्ञान ध्यान से बढ़कर है, और बल विज्ञान से बढ़कर है।

१०८. जो निःसीमता है, वही सुख है। अल्प में सुख नहीं। निःसीमता ही सुख है। उसे ही जानना चाहिए।

१०९. आत्मा से ही यह सब कुछ है।

११०. आहार शुद्ध होने पर सत्त्व शुद्ध होता है।

१११. अन्न से पुरुष होता है। अन्न से प्रजा की सृष्टि होती है।

११२. मेरा शरीर कर्मण्य बने। मेरी जीभ से मधु बरसे। कानों से मैं अधिकाधिक ज्ञान श्रवण करूँ।

११३. अधिकाधिक अन्न उपजाओ।

११४. आत्मा से बल पाता है, विद्या से अमरता पाता है।

११५. हमारा अध्ययन तेजस्वी हो।

११६. धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं हो सकती।

११७. आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः। कठ० २.२१
११८. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः। कठ० २.२३
११९. उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। कठ० ३.१४
१२०. नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। श्वेत० ३.१८
१२१. ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ ईश०
१२२. तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः। ईश० ७
१२३. अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ईश० ९
१२४. अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते। ईश० ११
१२५. योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि। ईश० १६
१२६. अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। मुण्डक० १.१.५
१२७. तपसा चीयते ब्रह्म। मुण्डक० १.१.८

---

११७. (आत्मा) बैठे हुए दूर चला जाता है, सोये हुए सर्वत्र पहुँच जाता है।
११८. यह आत्मा प्रवचन से नहीं प्राप्त होता है।
११९. उठो, जागो, श्रेष्ठ (आचार्यों) को पाकर ज्ञान प्राप्त करो।
१२०. नवद्वार के इस पुर (शरीर) में आत्मा (हंस) बाहर प्रवृत्त होता है।
१२१. ओ३म्, वह (ब्रह्म) पूर्ण है, यह (जगत्) पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण निकलता है। पूर्ण से पूर्ण लेने पर पूर्ण ही शेष रह जाता है।
१२२. एकता देखने वाले के लिए कैसा मोह और शोक ?
१२३. जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं।
१२४. अविद्या से मृत्यु को पारकर विद्या से अमृत भोगता है।
१२५. जो यह परम पुरुष है, वही मैं हूँ।
१२६. परा (विद्या) के द्वारा अक्षर (ब्रह्म) जाना जाता है।
१२७. तप से ब्रह्म का ध्यान किया जाता है।

१२८. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

मुण्डक० २.२.८

१२९. ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् । मुण्डक० २.२.११

१३०. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।

मुण्डक० ३.१.१

१३१. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् । मुण्डक० ३.१.५

१३२. सत्यमेव जयते नानृतम् । मुण्डक० ३.१.६

१३३. नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः । मुण्डक० ३.२.४

१३४. अन्नं वै प्रजापतिः । प्रश्न० १.१४

१३५. श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी ।। जबाल०

---

१२८. हृदय की गाँठ टूट जाती है, सभी संशय मिट जाते हैं, कर्म क्षीण हो जाते हैं, जब वह परावर (ब्रह्म और सृष्टि) देख लिया जाता है।

१२९. यह सारा अनन्त विश्व ब्रह्म ही तो है।

१३०. दो पक्षी––साथ रहने वाले, मित्र––एक ही वृक्ष पर बसते हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट फल खाता है, दूसरा न खाते हुए देखता रहता है।

१३१. इस आत्मा को सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य से नित्य ही पाया जाता है ।

१३२. सत्य की ही जय होती है, झूठ की नहीं।

१३३. यह आत्मा बलहीन के द्वारा नहीं पाया जा सकता।

१३४. अन्न प्रजापति है।

१३५. श्रुति और स्मृति के विरोध होने पर श्रुति ही मान्य है ।

१३६. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासंगि मोक्षे निर्विषयं स्मृतम्॥ मैत्री० ६.३४

महाभारतम्

१३७. सन्तानं हि परो धर्म एवमाह पितामहः। आदि० ४५.१५

१३८. धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥ आदि० ६२.५३

१३९. पुत्रस्पर्शात् सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते। आ० ७४.५७

१४०. सत्यं पुत्रशताद्वरम्। आदि० ७४.१०२

१४१. यदा न कुरुते पापं सर्वभूतेषु कर्हिचित्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ आदि० ७६.५२

---

१३६. मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है। बन्ध के लिए विषयासक्त और मोक्ष के लिए निर्विषय (मन) कहा गया है।

---

१३७. पितामह ने कहा है कि सन्तान ही परम धर्म है।

१३८. हे भरतर्षभ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जो यहाँ (महाभारत में) है, वह अन्यत्र है। जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है।

१३९. पुत्र स्पर्श से बढ़कर सुख देने वाला दूसरा स्पर्श संसार में नहीं।

१४०. सत्य सैंकड़ों पुत्रों से बढ़कर है।

१४१. जब कर्म, मन और वाणी से पुरुष सभी प्राणियों के प्रति कोई पाप नहीं करता, तब वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

१४२. त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।
आदि० ११५.३६

१४३. एतावान् पुरुषस्तात कृतं यस्मिन्न नश्यति।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः।।
आदि० १५६.१४

१४४. वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते। सभा० ५.४२

१४५. संविभागो हि भूतानां सर्वेषामेव दृश्यते।
तथैवापचमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिना।। वन० २.५३

१४६. धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम।। वन० १३१.११

---

१४२. कुल के लिए एक को, गाँव के लिए कुल, जनपद के लिए गाँव और आत्मा के लिए पृथिवी को भी छोड़ दे।

१४३. इतने से ही पुरुष होता है कि उसके लिए किया हुआ काम व्यर्थ नहीं जाता। तुम्हारे लिये जो कुछ कोई दूसरा करता है, तुम उसके लिए उससे अधिक कर दो।

१४४. वार्ता (कृषि, पशुपालन और व्यापार) का अवलम्ब लेने वाले लोग सुख पाते हैं।

१४५. सभी प्राणियों के लिए बाँटना ही देखा जाता है। गृहस्थ के द्वारा उसी प्रकार भोजन न करने वाले के लिए दिया जाय।

१४६. सत्यविक्रम! जो धर्म (दूसरे) धर्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म नहीं, कुधर्म है। जो धर्म बिना विरोध से है, वही धर्म है।

१४७. अर्जितं स्वेन वीर्येण नाप्यपाश्रित्य कंचन।
फलशाकमपि श्रेयो भोक्तुं ह्यकृपणं गृहे॥ वन० १९३.२९

१४८. आर्जवे वर्त्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते। वन० २१२.१२

१४९. अन्यायात् समुपात्तेन दानधर्मो धनेन यः।
क्रियते न स कर्तारं त्रायते महतो भयात्॥ वन० २५९.३३

१५०. न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः।
यथा सत्यानृशंसाभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च॥ भीष्म० २१.१०

१५१. धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
कर्ण० ६९.५९

१५२. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥ स्त्री० २.३

---

१४७. किसी का आश्रय लिए बिना अपने बल से अर्जित किए हुए फल और शाक का अपने घर में अदीन भाव से खाना श्रेयस्कर है।

१४८. ऋजु (सरल) व्यवहार करनेवाले पुरुष को ब्राह्मण्य सिद्ध होता है।

१४९. जो दान-धर्म अन्याय से प्राप्त किये हुए धन से किया जाता है, वह कर्त्ता को महाभय से नहीं बचाता।

१५०. विजय चाहने वाले बल-वीर्य से वैसा नहीं जीतते, जैसा सत्य और सौष्ठव से जीतते हैं।

१५१. (लोक को) धारण करने से धर्म (की सार्थकता) है, धर्म प्रजा को धारण करता है।

१५२. सभी संग्रह तितर-बितर होते हैं। ऊँचा चढ़ने पर पतन होता है। संयोग का अन्त वियोग में होता है। जीवन का अन्त मरण में होता है।

१५३. सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन तेषां स्यात् स्कन्धपर्ययः।।
शान्ति० १५.२६

१५४. प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः।।
शान्ति० २८.२९

१५५. महानयं धर्मपथः बहुशाखश्च भारत। शान्ति० १०८.१

१५६. दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम्।
शान्ति० १३९.६१

१५७. तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि। शान्ति० १६७.९

१५८. न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
शान्ति० १८८.१०

१५९. सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः। शान्ति० २०५.६

१६०. कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते। शान्ति० २४०.७

---

१५३. सूक्ष्म योनिवाले कुछ प्राणी तर्क से ही जाने जाते हैं। पलक के भी गिरने से उनका शरीर छिन्न-भिन्न हो सकता है।

१५४. संसार में श्रीमानों को प्रायः भोग करने की शक्ति नहीं रहती। दरिद्र तो पूर्ण रूप से काठ भी पचा डालते हैं।

१५५. हे भारत, यह धर्म-पथ महान् है, इसकी बहुत शाखाएँ हैं।

१५६. दुःख से सभी उद्विग्न होते हैं, सुख सब को अभीष्ट है।

१५७. अपने समान ही सब प्राणियों में व्यवहार करे।

१५८. वर्णों की कोई विशेषता नहीं, सारा जगत् ही ब्रह्ममय है।

१५९. जीवन में सुख से अधिक दुःख ही है—इसमें सन्देह नहीं।

१६०. प्राणी कर्म से बँधता है, विद्या से छुटकारा पाता है।

१६१. लोकसंग्रहसंयुक्तं विधात्रा विहितं पुरा।
सूक्ष्मधर्मार्थनियतं सतां चरितमुत्तमम्।। शान्ति० २५८.२५

१६२. न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्तते। शान्ति० २५९.१७

१६३. सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले।। शान्ति० २६१.९

१६४. मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते। शान्ति० २६२.३८ ✓

१६५. सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम।। शान्ति० ३२९.१३

१६६. चक्षुर्दद्यान्मनोदद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम्।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पंचदक्षिणः।। अनु० ७६

१६७. अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यद्वित्तनिचयो महान्। अनु० ६१.१९

१६८. न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। अनु० ११३.८ ✓

---

१६१. साधु पुरुषों का लोकसंग्रहकारक और सूक्ष्म प्रसंगों पर धर्मार्थ का निर्णय कर देनेवाला उत्तम चरित आरम्भ में ब्रह्मा के द्वारा बनाया गया।

१६२. कोई आचार सब के हित के लिए कभी नहीं होता।

१६३. हे जाजले, उसी ने धर्म को जाना है, जो नित्य सब का मित्र है, जो सब के हित में कर्म, मन और वाणी से लगा है।

१६४. केवल मनुष्य ही मनुष्यों को भी दास बनाकर भोगता है।

१६५. सत्य बोलना श्रेय है, सत्य से भी अच्छा है हित की बात कहना। जो सभी प्राणियों का सर्वोच्च हित है, वही सत्य है—यह मेरा (नारद) का मत है।

१६६. (अतिथि के प्रति) दृष्टि, मन और मधुर वाणी प्रयुक्त करे, उसके पीछे चले, उसकी उपासना करे। वही पञ्चदक्षिण यज्ञ है।

१६७. ब्राह्मण का यह अनर्थ है कि (उसके पास) अतिशय धन हो।

१६८. ऐसा व्यवहार दूसरे के साथ न करे, जो अपने लिए प्रतिकूल है।

०१६९. वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति। १४३.५२

१७०. आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात्तथा।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु० १४४.१९

✓१७१. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।। आश्व० ७५.४९

गीता

१७२. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। २.१६

१७३. न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। २.२०

---

१६९. अच्छे कर्म में लगा हुआ शूद्र भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है।

१७०. जो यहाँ अपने हेतु अथवा दूसरों के लिए और नर्म या हास्य का आश्रय लेकर भी झूठ नहीं बोलते, वे नर स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

१७१. कामनाओं की पूर्ति से काम शान्त नहीं होता। वह तो हवि से अग्नि की भाँति अधिकाधिक बढ़ता है।

---

१७२. जो असत् है, वह नहीं हो सकता। जो सत् है, वह मिट नहीं सकता। तत्त्वदर्शी लोगों के द्वारा दोनों (सत्, असत्) के रहस्य को देख लिया गया है।

१७३. यह (आत्मा) न उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। न तो ऐसा ही है कि यह होकर फिर नहीं होगा। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर यह (आत्मा) नहीं मारा जाता।

१७४. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।। २.२२

१७५. धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। २.३१

१७६. सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। २.३४

१७७. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। २.४७

१७८. प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। २.५५

१७९. यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। २.५८

---

१७४. जैसे जीर्ण वस्त्र को छोड़कर मनुष्य दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीर्ण शरीर को छोड़कर देही आत्मा दूसरे नये (शरीर) को प्राप्त करता है।

१७५. धार्मिक युद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिए कुछ भी नहीं है।

१७६. प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए अपयश मरने से भी बढ़कर है।

१७७. तुम्हारा अधिकार केवल काम करने तक है, कभी भी फल में नहीं। कर्मफल का हेतु मत बनो, काम न करने में तुम्हारी आसक्ति न हो।

१७८. हे पार्थ, जब (कोई) सभी मनोगत कामनाओं को छोड़ देता है, आत्मा के द्वारा आत्मा में परितोष पाता है, तब उसे स्थित-प्रज्ञ कहते हैं।

१७९. जैसे कछुवा अपने अंगों को सब ओर से समेट लेता है वैसे ही जब (कोई पुरुष) अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग कर लेता है तब उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।

१८०. इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। २.६०

१८१. वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। २.६१

१८२. अशान्तस्य कुतः सुखम्। २.६६

१८३. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। २.६९

१८४. आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्,
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। २.७०

१८५. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। ३.८

१८६. यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।। ३.१७

१८७. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। ३.२०

---

१८०. प्रबल इन्द्रियाँ बलात् मन को खींच लेती हैं।

१८१. जिसकी इन्द्रियाँ वश में हों, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

१८२. अशान्त के लिए सुख कहाँ ?

१८३. जो सभी प्राणियों के लिए रात है, उसमें संयमी जागता है।.

१८४. चारों ओर से भरे जाने वाले, अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में जैसे जल प्रवेश करते हैं, वैसे ही जिस (पुरुष) में सभी कामनायें प्रवेश करती हैं, वह शान्ति पाता है, विषयों की कामना करने वाला नहीं।

१८५. नियत काम को तुम करो। कर्म अकर्म से अच्छा है।

१८६. जो मानव आत्मा में रति पाता है, आत्मा में तृप्त है, आत्मा में सन्तुष्ट है, उसके लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं रह जाता।

१८७. कर्मों के द्वारा ही जनक आदि को पूर्ण सिद्धि मिली।

१८८. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तनुवर्तते।। ३.२१
१८९. न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्। ३.२६
१९०. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। ३.२७
१९१. गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते। ३.२८
१९२. प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। ३.३३
१९३. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। ३.३५
१९४. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। ४.७

---

१८८. श्रेष्ठ जो जो आचरण करता है, इतर जन भी वही-वही करते हैं। वह जो प्रमाण करता है, लोग उसका अनुवर्तन करते हैं।

१८९. अज्ञ कर्मासक्त लोगों की बुद्धि में भेद न उत्पन्न करे।

१९०. प्रकृति के गुणों के द्वारा सभी प्रकार के कर्म कराये जाते हैं। अहंकार से विमूढ़ आत्मा वाला पुरुष अपने को कर्ता मानता है।

१९१. गुण (सत्त्व आदि) गुणों में वर्तनशील है—यह मानकर (ज्ञानी) अनासक्त रहते हैं।

१९२. प्राणी (अपनी) प्रकृति के अनुकूल चलते हैं, रोक-थाम से क्या होगा?

१९३. अच्छी प्रकार सरलता से किये जाने वाले परधर्म से अपना धर्म अल्पगुण वाला हो तो भी श्रेय है। अपने धर्म में निधन—नाश श्रेय है। परधर्म भयावह है।

१९४. हे भारत (अर्जुन), जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब मैं अपने को उत्पन्न करता हूँ।

१९५. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। ४.८
१९६. ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। ४.११
१९७. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। ४.१३
१९८. किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। ४.१६
१९९. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। ४.३८
२००. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।। ५.२
२०१. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। ५.१८
२०२. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। ६.५

---

१९५. अच्छे लोगों की रक्षा करने के लिए, पापियों का विनाश करने के लिए, धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए मैं प्रतियुग उत्पन्न होता हूँ।

१९६. जो जैसे (भाव से) मेरी उपासना करते हैं, उन्हें वैसे ही मैं फल देता हूँ।

१९७. गुणकर्म-विभागानुसार चार वर्ण मेरे द्वारा रचे गये।

१९८. कर्म क्या है? अकर्म क्या है? इस विषय में कवि (विद्वान्) भी मोहित हो जाते हैं।

१९९. ज्ञान के समान पवित्र यहाँ कुछ भी नहीं है।

२००. संन्यास और कर्मयोग दोनों निःश्रेयस्कर हैं। इनमें से कर्म-संन्यास से कर्मयोग बढ़कर है।

२०१. पण्डित (लोग) विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल—सब में समदर्शी होते हैं।

२०२. (मनुष्य) अपना उद्धार अपने ही करे। अपने को गिरने न दे। वह अपने ही अपना बन्धु और अपने ही अपना शत्रु है।

२०३. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ ९.२
२०४. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ९.२९
२०५. निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव। १२.५५
२०६. समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्। १८.५४
२०७. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ १८.६१
२०८. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। १८.६६

रामायणम्

२०९. अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा। बा० ३३.७
२१०. आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः। अयो० १४.३

---

२०३. हे अर्जुन, जो कुछ करते, खाते, हवन करते, दान देते और तप करते हो, वह मुझे अर्पण कर दो।
२०४. मैं (विष्णु) सभी प्राणियों में समान हूँ। मुझे न तो द्वेष्य है और न प्रिय।
२०५. हे पाण्डव ! जो सभी प्राणियों में निर्वैर है, वह मुझे पाता है।
२०६. जो सभी प्राणियों में सम है, वह मेरी भक्ति प्राप्त करता है।
२०७. हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में रहते हैं। वे सभी प्राणियों को माया से संचारित करते हैं मानो वे प्राणी यन्त्रारूढ़ हों।
२०८. सभी धर्मों को छोड़ कर (तुम) अकेले मुझे को शरण रूप में प्राप्त करो।

---

२०९. स्त्री और पुरुष (सबके लिए) क्षमा अलङ्कार है।
२१०. धर्म जानने वाले सत्य को ही परम धर्म कहते हैं।

२११. सरितां तु पतिः स्वल्पां मर्यादां सत्ययान्वितः।
सत्यानुरोधात् समये वेलां स्वां नातिवर्तते।। अयो० १४.६

२१२. सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।
सत्यमेवाक्षया वेदा सत्येनावाप्यते परम्।। १४.७

२१३. नह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।। अयो० १९.२२

२१४. ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते। अयो० २०.५१

२१५. मृदुर्हि परिभूयते। अयो० २१.११

२१६. पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते। अयो० २१.३७

२१७. धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्। अयो० २१.४१

२१८. वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते। अयो० २३.१६

---

२११. सरितों का सत्ययुक्त स्वामी सत्य का पालन करने के कारण अपनी छोटी सी मर्यादा तट का समय होने के कारण उल्लंघन नहीं करता।

२१२. सत्य एकपद ब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अक्षय वेद है, सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

२१३. पिता की सेवा अथवा उनकी आज्ञा का पालन करना, जैसा महत्त्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर कोई धर्माचरण नहीं है। निश्चय ही मृत्यु अपने समय ही होती है।

२१४. असमय में मरना भी असम्भव है।

२१५. मृदु व्यक्ति का ही पराभव होता है।

२१६. पिता की आज्ञा का पालन करने वाला नष्ट नहीं होता है।

२१७. धर्म ही लोक में सर्वश्रेष्ठ है। धर्म में सत्य प्रतिष्ठित है।

२१८. आदर पाये हुए वीर दैव के भरोसे नहीं बैठते।

२१९. स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्याः पुत्राः सुखानि च।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ ३०.३६

२२०. आम्रं छित्त्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत् तु कः।
यश्चैनं पयसा सिञ्चेन्नैवास्य मधुरो भवेत्॥ अयो० ३५.१६

२२१. न हि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः। ३५.१७

२२२. न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति। ६१.१६

२२३. शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः। ६२.१५

२२४. कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे॥ ६३.८

२२५. अविज्ञाय फलं यो हि कर्मत्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः॥ अयो० ६३९

---

२१९. गुरुवृत्ति के अनुसार आचरण करने से स्वर्ग, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

२२०. कुठार से आम को काटकर नीम का सेवन कौन करे? जो इसे दूध से भी सींचता है, उसके लिए भी यह मीठा फल नहीं देता।

२२१. नीम से मधु नहीं टपकता—यह लोकोक्ति सत्य है।

२२२. दूसरे के द्वारा लाये हुए भक्ष्य पदार्थ को बाघ नहीं खाता।

२२३. शोक सब कुछ नष्ट कर देता है। शोक के समान शत्रु नहीं है।

२२४. जो फूल को देखकर फल के लिए लालच रखनेवाला आम के उपवन को काटकर पलाश को सींचता है, वह फलागम के समय शोक करता है।

२२५. फल को बिना जाने जो कर्म करने लग जाता है, वह फल लगने के समय शोक करता है, जैसे पलाश को सींचनेवाला।

२२६. यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः। अयो० १०३.३०

२२७. नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति।। अयो० १०५.१५

२२८. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।। अयो० १०६.१६

२२९. अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम्।। अयो० १०५.१९

२३०. अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः।। अयो० १०५.२०

२३१. यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः। अयो० १०९.९

२३२. सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।१०९.१०

---

२२६. जो अन्न पुरुष खाता है, वही अन्न उसके देवता खाते हैं।

२२७. पुरुष ईश्वर के समान स्वतन्त्र न रहने के कारण अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता। यम इस पुरुष को इधर-उधर खींचता रहता है।

२२८. सभी संग्रहों का अन्त विनाश है। उन्नतियों का अन्त पतन है। संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है।

२२९. जो रात बीत जाती है, वह फिर नहीं लौटती, जैसे जल से भरे हुए समुद्र की ओर यमुना जाती ही है।

२३०. सभी प्राणियों के दिन-रात चलते जाते हैं। वे शीघ्र ही आयु को हीन करते रहते हैं, जैसे ग्रीष्म में सूर्य की किरणें जल को।

२३१. जिस आचरण के राजा होते हैं, प्रजा भी वैसा ही आचरण करने लगती है।

२३२. सत्य ही राजाओं का अनृशंस एवं सनातन धर्म है, अतः राज्य सत्य स्वरूप है। सत्य में ही लोक प्रतिष्ठित है।

२३३. सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः॥
अयो० १०९.३१

२३४. धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥ अर० ९.३०

२३५. अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता। अर० २४.११

२३६. ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम्।
कालोऽप्यङ्गीभवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये॥ अर० ४९.२७

२३७. यथात्मनस्तथाऽन्येषां दारा रक्ष्या विपश्चिता। अर० ५०.८

२३८. यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो भुवि।
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत् कर्म समाचरेत्॥

२३९. सोत्साहस्यास्ति लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्। कि० १.१२२

---

२३३. सत्य, धर्म, पराक्रम, प्राणियों पर दया, प्रियवचन बोलना, ब्राह्मण, अतिथि एवं देवताओं की पूजा करना––इन सब को सन्तों ने स्वर्गलोक का मार्ग बताया है।

२३४. धर्म से अर्थ प्राप्त होता है। धर्म से सुख होता है। धर्म से ही मनुष्य सब कुछ पाता है। इस संसार में धर्म ही सार है।

२३५. शुभ चाहने वाले के द्वारा भविष्य के लिए उपाय करना ही चाहिए।

२३६. विनयरहित के काम का फल तत्काल देखा जाता है। पर इसमें समय की भी अपेक्षा हो सकती है जैसे अन्न के पकने में।

२३७. जैसे अपनी वैसे ही दूसरों की स्त्रियाँ बुद्धिमान् के द्वारा रक्षणीय हैं।

२३८. जिसे करने पर संसार में न तो धर्म होता है, न कीर्ति और न यश, अपितु शरीर को खेद होता है, उस काम को कौन करे?

२३९. उत्साही के लिए (तीनों) लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं।

२४०. आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः।। कि० ८.८

२४१. न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः।
न मित्रज्ञाति-सम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः।। कि० २५.७

२४२. सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं परिपालनम्। कि० ३२.७

२४३. पानादर्थश्च धर्मश्च कामश्च परिहीयते। कि० ३३.४६

२४४. कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः। सु० १.४४

२४५. भर्ता नाम परं नार्यां भूषणं भूषणादपि। सु० १६.२६

२४६. यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव। सु० २०.१२

२४७. धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसम्मताः।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये।। सु० २६.४७

---

२४०. धनी या दरिद्र, दुःखी या सुखी, निर्दोष या सदोष मित्र (जैसा भी हो) परम गति है।

२४१. काल की बन्धुता, हेतु, पराक्रम, मित्रादिक सम्बन्ध नहीं होते। कारण स्वरूप काल अपने वश की बात नहीं।

२४२. मित्र बनाना सर्वथा सरल है, मित्रता निभाना कठिन है।

२४३. (मद्य) पीने से अर्थ, धर्म और काम नष्ट हो जाते हैं।

२४४. जो उपकार करे उसका प्रत्युपकार करना चाहिए—यह सनातन धर्म है।

२४५. नारी के लिए पति सर्वोच्च अलंकार है।

२४६. जो बीत जाता है, वह नदियों के प्रवाह की भाँति फिर नहीं लौटता।

२४७. वे महात्मा मुनि धन्य हैं, सत्य-सम्मत हैं, जितात्मा हैं, महाभाग्यशाली हैं, जिनके लिए न तो प्रिय होता है और न अप्रिय।

२४८. प्रियान्न सम्भवेद् दुःखमप्रियान्नाधिकं भयम्।
तास्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम्।। सु० २६.४८

२४९. धन्यास्ते पुरुषश्रेष्ठा ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा।। सु० ५५.४

२५०. वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित्।। सु० ५५.५

२५१. यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुषउच्यते।। सु० ५५.६

२५२. यथा पुष्करपर्णेषु पतितास्तोयबिन्दवः।
न श्लेषमुपगच्छन्ति तथाऽनार्येशु संगतम्।। यु० १६.११

२५३. सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। यु० १६.२० ✓

---

२४८. जिनको प्रिय से दुःख नहीं होता और न अप्रिय से अधिक भय होता है। इन दोनों से जो विभुक्त हैं, उन महात्माओं को नमस्कार।

२४९. वे पुरुष-श्रेष्ठ धन्य हैं, जो महात्मा उत्पन्न हुए क्रोध को वैसे ही रोक लेते हैं, जैसे पानी के द्वारा जलते हुए आग को।

२५०. कुपित मनुष्य नहीं जानता कि क्या कथनीय है और क्या अकथनीय। क्रोधी के लिए कुछ अकार्य नहीं और न कुछ अकथनीय ही है।

२५१. वही पुरुष कहलाता है जो उत्पन्न हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा वैसे ही दूर कर देता है, जैसे साँप काँचुली को।

२५२. जैसे कमल के पत्तों पर गिरी हुई जल की बूंदें ठहरती नहीं, वैसे ही अनार्यों की संगति (होती है।)

२५३. हे राजन् सदैव प्रियवादी पुरुष तो सुलभ है। अप्रिय किन्तु सत्पथ बतलानेवाली बातों के कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं।

२५४. न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः। यु० ४९.२८
२५५. मरणान्तानि वैराणि। यु० १११.१००
२५६. अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः। यु० ११४.२५
२५७. शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते। यु० ११४.२६
२५८. नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि। उ० ३०.११

अशोकवाणी

२५९. क्षुद्रकेण हि केनापि प्रक्रममाणेन शक्यः विपुलोऽपि स्वर्गं आराधयितुम्।
२६०. इह न कश्चित् जीवः आलभ्यः प्रहोतव्यः।
२६१. अल्पव्ययता अल्पभाण्डता साधुः।
२६२. यो यदि कुर्यात् कल्याणं स दुष्करं करोति।

---

२५४. हे सुग्रीव, मनुष्यों के द्वारा दैव का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।
२५५. वैर का अन्त मरने के साथ हो जाता है।
२५६. पाप के काम का फल अवश्य मिलता है।
२५७. शुभ करने वाला शुभ पाता है, पाप करने वाला पाप भोगता है।
२५८. पृथिवी पर किसी प्राणी को अमरता नहीं मिली।

---

२५९. किसी छोटे पुरुष के द्वारा भी पराक्रम करते हुए विपुल स्वर्ग पाया जा सकता है।
२६०. किसी जीव को मार कर हवन न किया जाय।
२६१. थोड़ा व्यय करना और थोड़ा संग्रह करना ठीक है।
२६२. यदि कोई कल्याण करे तो वह दुष्कर करता है।

२६३. सर्वत्र जनस्यार्थं करिष्याम्यहम्।

२६४. कर्तव्यं हि मे सर्वलोकहितम्।

२६५. देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वत्र इच्छति सर्वे पाषण्डा वसेयुः।

२६६. इच्छति हि देवानां प्रियः सर्वभूतानामक्षतिं संयमं सम-चर्यां मार्दवम्। एष च मुख्यतमः विजयः देवानां प्रियस्य यो धर्मविजयः।

२६७. सर्वा च निरतिः भवतु या श्रमरतिः।

२६८. सर्वे मनुष्याः प्रजा मम।

२६९. यथा हि प्रजां विदितायै धात्र्यै निसृज्य स्वस्थो भवति—विदिता धात्री चेष्टते मे प्रजायै सुखं परिदातुमिति। एवं मम रज्जुकाः कृताः जानपदस्य हितसुखाय।

---

२६३. मैं सर्वत्र लोगों का हित करूँगा।

२६४. मुझे सभी लोगों का हित करना चाहिए।

२६५. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा सर्वत्र चाहते हैं कि सभी धर्म प्रतिष्ठित हों।

२६६. देवताओं का प्रिय (अशोक) चाहता है—सभी प्राणियों का कल्याण संयम, समचर्या और मृदुता। देवताओं के प्रिय का वही मुख्य विजय है, जो धर्मविजय है।

२६७. श्रम से प्रेम करना एकमात्र मनोरंजन हो।

२६८. सभी मनुष्य मेरी सन्तान हैं।

२६९. जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने लड़के को निपुण धाई के हाथ में सौंप कर निश्चिन्त होता है कि निपुण धाई मेरे लड़के को सुख देने का यत्न करेगी, उसी प्रकार मैंने जनपद के लोगों को हित और सुख पहुँचाने के लिये रज्जुकों को नियुक्त किया है।

२७०. जीवेन जीवः न पोष्टव्यः।

२७१. मार्गेष्वपि मया न्यग्रोधा रोपिताः छायोपगा भविष्यन्ति पशुमनुष्याणाम्।

२७२. यानि हि कानिचित् मया साधूनि कृतानि तानि लोक अनुप्रतिपन्नः तानि चानुविदधाति। तेन वर्धिता च वर्धिष्यते च मातापित्रोः शुश्रूषा, गुरुषु शुश्रूषा, वयोमहल्लकानामनुप्रतिपत्तिः, ब्राह्मणश्रमणेषु कृपणवराकेषु यावद्दासभृतकेषु सम्प्रतिपत्तिः।

२७३. धर्मप्रतिपत्तिश्च येयं दया, दानम्, सत्यम्, शौचम्, मोदः, साधुता च लोकस्य एवं वर्धिष्यते।

---

२७०. किसी प्राणी का पोषण किसी अन्य प्राणी की हिंसा से न हो।

२७१. मार्ग में मेरे द्वारा वटवृक्ष लगवाये गये जो पशु और मनुष्यों के लिए छायाप्रद हों।

२७२. जो कुछ भला काम मेरे द्वारा किया गया है, उसे लोग अपनाते हैं और अनुकरण करते हैं। उससे माता-पिता और गुरु की सेवा बढ़ी है और बढ़ेगी और वयोवृद्धों का सम्मान होगा। साथ ही ब्राह्मण-श्रमण, दीन-हीन, दास और नौकरों के प्रति आदर होगा।

२७३. धर्म का आचरण इसी में है कि दया, दान, सत्य, शौच, मोद, साधुता आदि लोक में बढ़ें।

चाणक्यसूत्रम्

२७४. साहसे खलु श्रीः वसति। २.५०

२७५. न क्षुधार्तोऽपि सिंहस्तृणं चरति। २.६४

२७६. नमत्यपि तुलाकोटिः कूपस्योदकक्षयं करोति। २.७४

२७७. क्षीराश्रितमुदकं क्षीरमेव भवति। २.७७

२७८. यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले। ३.६०

२७९. पुष्पार्थिनः सिंचन्ति अद्भिः तरुम्। ४.२९

२८०. नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम्। ४.६५

२८१. श्वो मयूरादद्य कपोतो वरः। ५.५९

२८२. एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत्। ५.६१

२८३. अतिदीप्तोऽपि खद्योतो न पावकः। ५.६४

२८४. यथा बीजं तथा निष्पत्तिः। ५.६७

२८५. न हंसाः प्रेतवने रमन्ते। ५.११२

---

२७४. साहस में श्री रहती है।

२७५. भूखा होने पर भी सिंह घास नहीं खाता।

२७६. झुकती हुई ढेकुल कुँएँ के जल को सुखा देती है।

२७७. दूध का आश्रय लेने वाला पानी दूध ही हो जाता है।

२७८. लपसी भी समय आने पर प्राण धारण करती है।

२७९. फूल चाहने वाले जल से पौधे को सींचते भी हैं।

२८०. ऐश्वर्य पिशाचपन के बिना सम्भव नहीं।

२८१. कल के मोर से आज का कपोत ही अच्छा है।

२८२. रेंड़ का सहारा लेकर हाथी को न खिजाये।

२८३. अतिशय जलता हुआ भी खद्योत आग नहीं होता।

२८४. जैसा बीज वैसा फल।

२८५. हंस श्मशान में नहीं रहते।

मनुस्मृतिः

२८६. वेदोऽखिलो धर्ममूलम्॥
सर्वज्ञानमयो हि सः॥ २.६.७

२८७. आचारः परमो धर्मः। १.१०८

२८८. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। २.१०

२८९. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ २.२०

२९०. यमेव तु शुचिं विद्यात् नियतब्रह्मचारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने॥ २.११५

२९१. अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥ २.१२१

---

२८६. अखिल वेद धर्म का मूल है। वह सर्वज्ञानमय है।

२८७. सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है।

२८८. श्रुति को वेद जानो। धर्मशास्त्र स्मृति है।

२८९. इस देश में उत्पन्न श्रेष्ठ जन्म वाले लोगों से पृथिवी के सभी मानव अपने चरित्र की शिक्षा लें।

२९०. (विद्या आचार्य से कहती है)—उसे ही मेरा ज्ञान दें, जिसे पवित्र, नियम पालन करनेवाला ब्रह्मचारी समझें, जो विप्र हो, (विद्या) निधि की रक्षा करने वाला हो और प्रमाद न करता हो।

२९१. अभिवादनशील और नित्य वृद्धों की सेवा करनेवाले व्यक्ति के चार—आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

२९२. सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति॥ २.१६३

२९३. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ २.१६८

२९४. श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि। २.२३८

२९५. विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। २.२३९

२९६. अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्। ३.३

२९७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। ३.५६

२९८. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिभौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ ३.७०

२९९. स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्। ३.७५

---

२९२. अवमानित पुरुष सुख से सोता और जागता है। वह सुख से संसार में विचरण करता है। अनादर करने वाला नष्ट हो जाता है।

२९३. जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर दूसरे कामों में श्रम करता है, वह जीते हुए ही वंश सहित शीघ्र शूद्रता प्राप्त करता है।

२९४. उत्तम विद्या को श्रद्धापूर्वक नीच से भी लेना चाहिए।

२९५. विष से भी अमृत और बालक से भी सुभाषित ग्रहण करें।

२९६. शरीर को कष्ट न देते हुए धन-संचय करे।

२९७. जहाँ स्त्रियाँ पूजित होती हैं, वहाँ देवताओं का वास होता है।

२९८. अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, होम देवयज्ञ है, बलि भूतयज्ञ है और अतिथिपूजक नृयज्ञ है।

२९९. नित्य स्वाध्याय में तत्पर होना चाहिए।

३००. यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।। ३.७८

३०१. तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।। ३.१०१

३०२. धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्। ३.१०६

३०३. यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्।। ४.३

३०४. सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः। ४.१७

३०५. आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्।। ४.७६

३०६. यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः।। ४.१५९

३०७. सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।। ४.१६०

---

३००. तीनों आश्रमों के लोग ज्ञान और अन्न के द्वारा गृहस्थ से पोषित हैं। अतएव गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ आश्रम है।

३०१. अतिथि के लिए तिनके का आसन, ठहरने का स्थान, पानी और मीठी वाणी—इनका सज्जनों के घर पर कभी अभाव नहीं होता।

३०२. अतिथि के पूजन में धन, यश, आयु या स्वर्ग प्राप्त होते हैं।

३०३. अपने पद के अनुकूल, जीवन-यापन-मात्र के लिए योग्य कामों को करते हुए अपने शरीर को क्लेश न देते हुए धन संचय करे।

३०४. स्वाध्याय के बाधक सभी कामों को छोड़ दे।

३०५. गीले पाँव रखकर भोजन करने वाला दीर्घायु होता है।

३०६. जो काम परवश में हों उन्हें यत्न से छोड़ दे। जो अपने वश में हों, उन्हें यत्न से पूरा करे।

३०७. सब कुछ परवश दुःख है, अपने वश में सब कुछ सुख है।

३०८. यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥ ४.१६१

३०९. हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते। ४.१७०

३१०. अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥ ४.१७४

३११. परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ॥ ४.१७६

३१२. प्रतिग्रहसमर्थेऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्। ४.१८६

३१३. सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। ४.२३३

३१४. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥ ४.२३८

३१५. एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः।
एकाकी चिन्तमानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति॥ ४.२५८

---

३०८. जिस काम को करते हुए अन्तरात्मा का परितोष हो उसे प्रयत्न से करे, उसके विपरीत को छोड़ दे।

३०९. जो पुरुष नित्य हिंसा में रत है, वह इस लोक में सुख नहीं पाता।

३१०. अधर्म से कुछ समय तक (पुरुष) बढ़ता है, फिर कल्याण का अनुभव करता है, शत्रुओं को जीत भी लेता है किन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाता है।

३११. उस अर्थ और काम को छोड़ देना चाहिए, जो धर्मवर्जित हों।

३१२. दान लेने की क्षमता होने पर भी उसके प्रति आसक्ति न रखे।

३१३. सभी दानों से ज्ञान दान बढ़कर है।

३१४. सत्य बोले, प्रिय बोले। अप्रिय सत्य न बोले। प्रिय होने पर भी असत्य न बोले। यह सनातन धर्म है।

३१५. अकेले ही नित्य निर्जन-स्थान में अपने हित की बात सोचे। अकेले सोचने वाला परम कल्याण प्राप्त कर लेता है।

३१६. ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्। ४.२६७
३१७. कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्यलक्षणम्।। ६.४४
३१८. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। ६.९२
३१९. बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।। ७.८
३२०. जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।। ७.४४
३२१. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। ८.१५
३२२. एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः। ८.१७
३२३. आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः। ८.८४
३२४. न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति। ८.३८९

---

३१६. ब्राह्म मुहूर्त में जगे और धर्मार्थ की चिन्ता करे।
३१७. खप्पर, वृक्ष की जड़, चीथड़े, किसी की सहायता न लेना सभी के प्रति समभाव—यही मुक्त के लक्षण हैं।
३१८. दृढ़ निश्चय, क्षमा, दम, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियों को विषयों के चक्कर में न पड़ने देना, बुद्धि, विद्या, सत्य क्रोध का न होना—ये धर्म के दश लक्षण हैं।
३१९. मनुष्य समझकर बालक भी प्रजापालक (राजा) अवमानना करने योग्य नहीं है। वह महादेवता है जो मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित है।
३२०. जितेन्द्रिय (राजा) ही प्रजा को वश में रख सकता है।
३२१. धर्म का नाश करने पर वह नाश कर देता है; धर्म रक्षित होने पर रक्षा करता है।
३२२. एक ही मित्र है धर्म, जो मरने के पश्चात् भी साथ देता है।
३२३. आत्मा ही अपना साक्षी है। आत्मा ही अपनी गति है।
३२४. माता, पिता, स्त्री, पुत्र—कोई भी छोड़ने योग्य नहीं है।

३२५. स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति।। ९.७

३२६. यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः। ९.११०

३२७. पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा।। ९.१३८

३२८. आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते।। ९.३००

३२९. योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं सन्तारयति तावुभौ।। ११.१९

३३०. बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।। १२.९९

३३१. एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदं।। १२.१२५

---

३२५. अपनी स्त्री की रक्षा करते हुए मनुष्य अपनी सन्तान, चरित्र, कुल अपने को, अपने धर्म को सुरक्षित कर लेता है।

३२६. जो जेठा भाई जेठे की वृत्ति रखे वह माता है, वह पिता भी है।

३२७. पुत्र पिता को पुत् नाम नरक से बचाता है। इसीलिए स्वयं स्वयंभू ने उसे पुत्र कहा है।

३२८. पुनः पुनः श्रान्त होने पर भी काम करता ही जाये। काम में लगे रहने पर पुरुष को विजय-श्री मिल कर रहती है।

३२९. जो व्यक्ति असाधु से धन लेकर साधु के लिए देता है, वह अपने को नाव बनाकर दोनों को पार लगा देता है।

३३०. सनातन वेदशास्त्र सभी प्राणियों का पोषण करते हैं।

३३१. जो स्वयं अपने आपको सभी प्राणियों में देखता है, वह सबकी समता पाकर परमपद ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

३३२. इदं च रोगव्यसनं प्रजानां पश्यंश्च विश्रम्भमुपैति लोकः।
विस्तीर्णमज्ञानमहो नराणां हसन्ति ये रोगभयैरमुक्ताः॥
३.४६

३३३. हीनस्य मध्यस्य महात्मनो वा सर्वस्य लोके नियतो विनाशः।
३.५९

३३४. किमिमा नावगच्छन्ति चपलं यौवनं स्त्रियः।
यतो रूपेण संमत्तं जरा यन्नाशयिष्यति॥ ४.५६

३३५. जरां व्याधिं च मृत्युं च को हि जानन्सचेतनः।
स्वस्थस्तिष्ठेन्निषीदेद्वा शयेद्वा किं पुनर्हसेत्॥ ४.५९

३३६. अहितात् प्रतिषेधश्च हिते चानुप्रवर्तनम्।
व्यसने चापरित्यागस्त्रिविधं मित्रलक्षणम्॥ ४.६४

३३७. दाक्षिण्यमौषधं स्त्रीणां दाक्षिण्यं भूषणं परम्।
दाक्षिण्यरहितं रूपं निष्पुष्पमिव काननम्॥ ४.७०

---

३३२. मानवों की यह रोग-विपत्ति देखते हुए लोग निःशङ्क पड़े हैं। अहो, लोगों का अज्ञान विस्तीर्ण है, जो रोग के भय से युक्त होकर हँसते हैं।

३३३. नीच, मध्यम और महात्मा––सबका संसार में विनाश नियत है।

३३४. क्या ये स्त्रियाँ नहीं जानतीं कि यौवन चपल है। रूप से प्रमत्त इस यौवन को बुढ़ापा मिटा देगी।

३३५. कौन सचेतन जरा, व्यधि और मृत्यु को जानता हुआ स्वस्थ रहेगा, बैठेगा, या फिर हँसेगा ?

३३६. मित्र के तीन लक्षण हैं––अहित से हटाना, हित में लगाना और विपत्ति में साथ न छोड़ना।

३३७. उदारता स्त्रियों के लिए औषध है, वह परम भूषण है। उदारता रहित रूप वैसा ही है जैसा पुष्पविहीन वन।

३३८. अनित्यं तु जगन्मत्वा नात्र मे रमते मनः। ४.८५

३३९. वयसि प्रथमे मतौ चलायां
बहुदोषां हि वदन्ति धर्मचर्याम्। ५.३०

३४०. शरणाज्ज्वलनेन दह्यमानात्
नहि निश्चिक्रमिषुः क्षमं ग्रहीतुम्। ५.३७

३४१. सुलभाः खलु संयुगे सहाया विषयावाप्तसुखे धनार्जने वा।
पुरुषस्य तु दुर्लभाः सहायाः पतितस्यापदि धर्मसंश्रये वा॥
५.७६

३४२. को जनस्य फलस्थस्य न स्यादभिमुखो जनः।
जनीभवति भूयिष्ठं स्वजनोऽपि विपर्यये॥ ६.९

३४३. कुलार्थं धार्यते पुत्रः पोषार्थं सेव्यते पिता।
आशयाच्छ्लिष्यति जगन्नास्ति निष्कारणता स्वता॥
६.१०

---

३३८. संसार को अनित्य मान कर मेरा मन इसमें नहीं रमण करता।

३३९. प्रथम वयस में बुद्धि चंचल रहती है। तब (तप आदि) धर्मचर्या को अधिक दोषावह कहते हैं।

३४०. आग से जलते घर से निकलने की इच्छा करने वाले को पकड़ना उचित नहीं।

३४१. युद्ध में, विषय-भोगों से प्राप्त सुखों में या धन कमाने में साथी सुलभ हैं किन्तु आपत्ति में पड़ने पर या (तप आदि) धर्म का आश्रय लेने में साथी दुर्लभ रहते हैं।

३४२. फल देने वाले पुरुष के लिए कौन अनुकूल नहीं हो जाता? विपरीत होने पर स्वजन भी पराया है।

३४३. कुल के लिए पुत्र धारण किया जाता है, पोषण के लिए पिता की सेवा की जाती है। जगत् आशय से ही मेल करता है। अकारण ममता नहीं होती।

३४४. शोकहेतुषु कामेषु सक्ताः शोच्यास्तु रागिणः। ६.१८

३४५. पृथिव्यां धर्मदायादाः दुर्लभास्तु न सन्ति वा। ६.२०

३४६. अकालो नास्ति धर्मस्य जीविते चंचले सति। ६.२१

३४७. जीविते को हि विश्रम्भो मृत्यौ प्रत्यर्थिनि स्थिते। ६.२२

३४८. प्राज्ञैः समानेन परिश्रमेण
कार्यं तु तद्यत्र पुनर्न कार्यम्। ७.२५

३४९. आहार शुद्धया यदि पुण्यमिष्टम्
तस्मान्मृगाणामपि पुण्यमस्ति। ७.२८

३५०. न पावयिष्यन्ति हि पापमापः। ७.३०

३५१. बुधः परप्रत्ययतो हि को व्रजेत्
जनोऽन्धकारेऽन्ध इवान्धदेशिकः॥ ९.७४

---

३४४. शोक के कारण जो विषय है, उनमें आसक्त रोगी लोग शोच्य हैं।
३४५. पृथ्वी पर धर्म के दायाद दुर्लभ हैं या नहीं ही हैं।
३४६. जीवन चंचल है—ऐसी स्थिति में धर्म के लिए असमय नहीं होता।
३४७. जीवन का क्या विश्वास जब मृत्यु सामने खड़ी है?
३४८. समान परिश्रम से बुद्धिमान् वह काम करे कि उसे फिर कुछ करना शेष न रहे।
३४९. यदि आहार की शुद्धि से पवित्रता होती हो तो मृगों को भी पुण्य होगा।
३५०. (तीर्थों का) जल पाप को पवित्र नहीं करता।
३५१. कौन बुद्धिमान् दूसरे का विश्वास करके वैसे चलेगा जैसे अन्धकार में अन्धा अन्धे के नेतृत्व में चलता है।

३५२. वृथापि खेदो हि वरं शुभात्मनः
सुखं न तत्त्वेऽपि विगर्हितात्मनः। ९.७५

३५३. प्रहीणदोषो ह्यनृतं न वक्ष्यति। ९.७६

३५४. सद्भिः सहीया हि सतां समृद्धिः। १०.२६

३५५. ये चार्थकृच्छ्रेषु भवन्ति लोके
समानकार्याः सुहृदां मनुष्याः।
मित्राणि तानीति परैमि बुद्ध्या
स्वस्थस्य वृद्धिष्विह को हि न स्यात्॥ ११.४

३५६. कामैः सतृष्णस्य हि नास्ति तृप्तिः।
यथेन्धनैर्वातसखस्य वह्नेः ११.१०

३५७. कदलीगर्भनिःसारः संसार इति निश्चयः। १४.६

३५८. पुरुषो यदि जानीत मात्सर्यस्येदृशं फलम्।
सर्वथा शिबिवद्दद्याच्छरीरावयवानपि॥ १४.३०

---

३५२. शुभात्मा का व्यर्थ श्रम भी अच्छा है किन्तु निन्दितात्मा का वास्तविक सुख भी अच्छा नहीं।

३५३. जिसका दोष मिट गया, वह झूठ नहीं बोलता।

३५४. सज्जनों की समृद्धि सज्जनों के साथ होती है।

३५५. धन की कमी होने पर संसार में जो लोग मित्रों का काम करते हैं, उन्हें ही मित्र समझता हूँ। अच्छी स्थिति वाले पुरुष की वृद्धि में कौन साथ नहीं देता।

३५६. तृष्णावान् को काम से तृप्ति नहीं होती, जैसे लकड़ी से अग्नि की।

३५७. यह संसार केले के पेड़ के भीतरी भाग की भाँति असार है—यह निश्चय है।

३५८. पुरुष यदि जानता कि मात्सर्य का ऐसा (बुरा) फल है तो वह सब प्रकार से शिबि की भाँति अपने शरीर के अवयवों को भी दान कर देता है।

०३५९. यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवतु।
वयांसि किं न कुर्वन्ति चञ्च्वा स्वोदरपूरणम्।। १.२३

०३६०. स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा।
सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम्।। १.२८०

३६१. ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते सभ्या इह भूतले।
आगच्छन्ति गृहे येषां कार्यार्थं सुहृदो जनाः।। १.२८५

३६२. वरं वनं वरं भैक्षं वरं भारोपजीवनम्।
वरं व्याधिर्मनुष्याणां नाधिकारेण सम्पदः।। १.१०३

३६३. अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।। १.३४७

३६४. बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरावेष्टयते रज्जुर्येन नागोऽपि बद्धयते।। १.३६१

---

३५९. जिसके जीने पर बहुत से जीवित रहें, वही यहाँ जीये। पक्षी क्या चोंच से अपनी उदरपूर्ति नहीं कर लेते ?

०३६०. उपदेश से स्वभाव नहीं बदला जा सकता। तपाया हुआ पानी फिर शीतल हो जाता है।

३६१. इस संसार में वे ही धन्य, विवेकी और सभ्य हैं, जिनके घर पर मित्र लोग काम के लिए आते हैं।

३६२. वन में रहना, भिक्षा माँगना, भार ढोकर जीविका चलाना, व्याधित रहना—मनुष्य के लिए यह सब अच्छा है। सेवा-वृत्ति से सम्पत्तिशाली होना नहीं।

३६३. भावी परिस्थितियों के लिए विधान कर लेनेवाले और प्रत्युत्पन्न बुद्धि वाले—दोनों ही सुख पाते हैं। जो होना हो वह हो—ऐसा विचार वाला तो नष्ट ही होता है।

३६४. अनेक असार वस्तुओं का संघटन भी दुर्जय होता है। तृणों के समवाय से जो रस्सी बनती है, उससे हाथी बाँधा जाता है।

३६५. एकस्य कर्म संवीक्ष्य करोत्यन्योऽपि गर्हितम्।
गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।। १.३७३

३६६. मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः।। १.४३५

३६७. पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः। १.४५०

३६८. मृत्योर्बिभेषि किं बाल न स भीतं विमुंचति।
अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्।। १.४५२

३६९. सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यशः।
चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किंचित्प्रतिमं सुखम्।।

३७०. अपि सम्पूर्णतायुक्तैः कर्तव्याः सुहृदो बुधैः।
नदीशः परिपूर्णोऽपि चन्द्रोदयमपेक्षते।। २.२९

---

३६५. एक व्यक्ति के बुरे काम को देखकर दूसरा भी गर्हित काम करता है। लोक आगे गये हुए का अनुकरण करता है। लोग वस्तुओं का तत्त्वालोचन करके काम नहीं करते।

३६६. सुसंस्कृत बुद्धि वाले लोग दूसरों की स्त्रियों को माता की भाँति, दूसरे के धन को ढेले के समान और सभी प्राणियों को अपने समान समझते हैं।

३६७. पण्डित शत्रु भी हो तो अच्छा, हित करनेवाला भी मूर्ख ठीक नहीं।

३६८. हे मूर्ख, मृत्यु से क्यों डरते हो? वह डरे हुए को भी कहाँ छोड़ती है? आज या सौ वर्ष के पश्चात् प्राणियों की मृत्यु निश्चित होगी।

३६९. जिसके घर में नित्य मित्र आते हों, उसके चित्त में सुख का अनुपम साधन है।

३७०. स्वयं भरापूरा होने पर भी विद्वानों को मित्र बना लेने चाहिए। समुद्र पूर्ण होने पर भी चन्द्रोदय की अपेक्षा रखता है।

३७१. ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्।। २.५१

३७२. कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्।। २.५८

३७३. विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।। २.५९

३७४. किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिनैः किं च शीतलैः।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।। २.६१

३७५. केनामृतमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।
आपदां च परित्राणं शोकसन्तापभेषजम्।।

३७६. नाभ्युत्थानक्रिया यत्र नालापा मधुराक्षराः।
गुणदोषकथा नैव तत्र हर्म्ये न गम्यते।।. २.६९

---

३७१. देता है, लेता है, रहस्य कहता है, पूछता है, खाता है, खिलाता है—ये ही छः प्रकार के प्रीति के लक्षण हैं।

३७२. शक्तिमान् के लिए कौन उत्तरदायित्व बड़ा है? उद्यमी के लिए क्या दूर है? विद्वान् के लिए कौन विदेश है और प्रियवादी के लिए कौन शत्रु है?

३७३. विद्वत्ता और राजत्व दोनों कभी समान नहीं हो सकते। राजा अपने देश में पूजा जाता है। विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

३७४. कपूर के साथ पिसे चन्दन से क्या? शीतल हिम से क्या? वे सभी मित्र के शरीर के स्पर्श के सोलहवें भाग के बराबर नहीं पड़ते।

३७५. किसने दो अक्षरों का मित्र यह अमृत पद बनाया? यह विपत्तियों का प्रतिकार और शोक के ताप की औषधि है।

३७६. उस प्रासाद में नहीं जाना चाहिए, जहाँ जाने पर आवभगत, मीठी वाणी वाली बातचीत और गुण-दोष की कथा न हो।

३७७. शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयं वित्तमुपार्जितम्।
रसायनमिव प्राज्ञैर्हेलया न कदाचन।। २.८४

३७८. प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोऽपि तं लंघयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्।। २.११२

३७९. आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
वृद्धकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद्भवेत्।। २.११८

३८०. अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान्कष्टसंश्रयान्।। २.१२४

३८१. अर्थार्थी यानि कष्टानि मूढोऽयं सहते जनः।
शतांशेनापि मोक्षार्थी तानि चेन्मोक्षमाप्नुयात्।। २.१२५

३८२. यथैकेन न हस्तेन तालिका सम्प्रपद्यते।
तथोद्यमपरित्यक्तं न फलं कर्मणः स्मृतम्।। २.१३५

---

३७७. बुद्धिमान् मनुष्य के द्वारा स्वयं उपार्जित धन को औषधि की भाँति थोड़ा-थोड़ा भोगना चाहिए, कभी अवज्ञापूर्वक नहीं।

३७८. मनुष्य प्राप्त धन को पाता है, देव भी इस क्रम का उल्लंघन करने में असमर्थ हैं। अतः न तो शोक करता हूँ और न विस्मय है—जो मेरा है, वह दूसरे का नहीं।

३७९. आपत्ति के समय जो मित्र है, वही मित्र है। उन्नति के समय तो दुर्जन भी मित्र बन जाते हैं।

३८०. धन के कमाने में दुःख कमाये हुये की रक्षा में दुःख, उसके नाश में दुःख, व्यय में दुःख। धन को धिक्कार है! उससे कष्ट ही कष्ट है।

३८१. धन के लिए जो कष्ट मूढ़ सहते हैं, उसके सौवें भाग से मोक्ष की चेष्टा करने वाले को मोक्ष मिल जाय।

३८२. जैसे एक हाथ से ताली नहीं बजती, वैसे ही कर्म का फल उद्यम-विहीन होने पर नहीं होता।

३८३. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः॥ २.१३७

३८४. उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सिंहस्य सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥ २.१३८

३८५. यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव च॥ २.१४४

३८६. सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते,
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति।
कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालम्।
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्॥ २.१५९

३८७. सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥ २.१६०

---

३८३. उद्योगी पुरुषसिंह के पास लक्ष्मी आती है। दैव के द्वारा देय है—यह कुत्सित पुरुष कहा करते हैं। दैव का छोड़कर अपनी शक्ति से पुरुषार्थ दिखाओ। यदि यत्न करने पर भी कार्य न हो तो विचार करो कि कौन-सा दोष रहा?

३८४. उद्यम से कार्य होते हैं, मनोरथ से नहीं। सोये सिंह के मुँह में मृग नहीं घुसते।

३८५. जो ध्रुव को छोड़कर अध्रुव का आश्रय लेते हैं, उनका ध्रुव नष्ट हो जाता है और अध्रुव तो नष्ट ही है।

३८६. साँप वायु पीते हैं, पर दुर्बल नहीं। सूखे तृण से बनैले हाथी बली होते हैं। कन्द-फल से श्रेष्ठ मुनिवर समय बिताते हैं। सन्तोष ही पुरुषों का परम धन है।

३८७. सन्तोषामृत से तृप्त शान्त-चित्त वालों को जो सुख होता है, वह धन लोभियों को कहाँ, जो इधर-उधर भटकते हैं।

३८८. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति। २.१८६

३८९. नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपकर्षति।
स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुनापि परिभूयते॥ ३.४४

३९०. परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्। ४.१०१

३९१. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ ४.१०२

३९२. प्राणवद्रक्षयेद् भृत्यान् स्वकायमिव पोषयेत्। ३.१२२

३९३. कालो हि सकृदभ्येति यन्नरं कालकांक्षिणम्।
दुर्लभः स पुनस्तेन कालकर्माचिकीर्षता॥ ३.१२९

३९४. न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं हि गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम्॥ ३.१४५

---

३८८. विपत्तियाँ अकेले नहीं आतीं।

३८९. अपने स्थान पर मकर भी हाथी को जीत लेता है। वही अपने स्थान से भ्रष्ट होने पर कुत्ते से भी हराया जाता है।

३९०. परोपकार पुण्य के लिए और परपीडन पाप के लिए है।

३९१. धर्म का सार सुनें और सुनकर श्रद्धा करें कि अपने प्रतिकूल जो काम है, वह दूसरे के लिए न करें।

३९२. भृत्य की प्राण की भाँति रक्षा करें और अपने शरीर की भाँति पोषण करें।

३९३. समय की अपेक्षा रखने वाले मनुष्य के लिए समय एक बार आता है। समय आने पर काम न करने वाले के लिए पुनः अच्छा समय दुर्लभ ही है।

३९४. घर ही घर नहीं, गृहणी को घर कहा जाता है। जिस घर में गृहिणी न हो, वह अरण्य के समान है।

३९५. महत्त्वमेतन्महतां नयालङ्कारधारिणाम्।
न मुंचन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये।। ३.२३८

३९६. बुभुक्षितः किं न करोति पापं
क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति।
आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्य
न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम्।। ४.१६

३९७. सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुस्तरः।। ४.२८

३९८. मौनं सर्वार्थसाधनम्। ४.४८

३९९. वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः।। ५.३६

४००. उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।। ५.४०

४०१. धर्मस्य त्वरिता गतिः।। ५.४१

---

३९५. नीति के द्वारा अलङ्कृत महापुरुषों का महत्त्व इसी बात में है कि वे आरम्भ किये हुए काम को कठोर विपत्ति पड़ने पर भी नहीं छोड़ते।

३९६. भूखा क्या पाप नहीं करता? क्षीण करुणारहित होते हैं। भद्रे प्रियदर्शन से कहें कि गंगदत्त फिर कुयें में नहीं आता।

३९७. सर्वनाश के उत्पन्न होने पर पण्डित आधा छोड़ देते हैं। आधे से ही काम करते हैं। सर्वनाश असह्य है।

३९८. चुप रहने से सभी काम बनते हैं।

३९९. बुद्धि श्रेष्ठ है, विद्या नहीं। विद्या से बुद्धि बढ़कर है। बुद्धिहीन नष्ट होते हैं, जैसे सिंह बनानेवाले।

४००. उत्सव, व्यसन, अकाल, शत्रुसंकट, राजद्वार और श्मशान में जो साथ दे वही बान्धव है।

४०१. धर्म की गति (फल-प्रदायिनी शक्ति) शीघ्र होती है।

४०२. दीर्घसूत्री विनश्यति। ५.४२

४०३. एकः स्वादु न भुंजीत नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥
एको न गच्छेदध्वानं नैकश्चार्थान् प्रचिन्तयेत्॥ ५.९५

४०४. यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी। ५.९८

भासः

४०५. चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। स्वप्न १.४

४०६. प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते। स्वप्न १.७

४०७. सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। प्रतिमा १.३३

४०८. पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च। प्रतिमा १.१३४

४०९. न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्। प्रतिमा ४.२०

४१०. न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति। प्रतिमा ५.७३

४११. तिर्यग्योनयोऽपि उपकृतमवगच्छन्ति। प्रतिमा ६.४५

---

४०२. आलसी नष्ट होता है।

४०३. अकेले स्वादिष्ट वस्तु न खाये, सोये हुए लोगों के बीच अकेले न जागे। अकेले मार्ग न चले और न अकेले आवश्यक कर्त्तव्यों पर विचार करे।

४०४. जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसी सिद्धि मिलती है।

---

४०५. पहिये के अरों की पंक्ति के समान भाग्य की पंक्ति चलायमान है।

४०६. द्वेष या आदर संकल्प से उत्पन्न होता है।

४०७. अच्छा रूप सब प्रकार शोभनीय होता है।

४०८. वनवृक्ष के गिरने पर लता भी भूमि पर आ जाती है।

४०९. दूसरे का दोष कहना उचित नहीं है।

४१०. मृग के बच्चे बाघ को नहीं पछाड़ते।

४११. पशु-पक्षी भी उपकार समझते हैं।

४१२. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते,
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रताम्
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति॥ चारुदत्त ३.१५

४१३. यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणाम्,
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः॥ अवि. ३.१२

४१४. न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति।
यथा तत् तद्गताकांक्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति॥ अवि. ४.१४

४१५. प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे,
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः॥ अवि. ५.५

४१६. समूलं वृक्षमुत्पाट्य शाखाश्च्छेत्तुं कुतः श्रमः।
प्रतिमा ४.२०

---

४१२. दुःखों का अनुभव कर लेने पर सुख शोभा पाता है। मानो अन्धकार से बाहर निकलकर दीपदर्शन कर लिया हो। जो सुख से दरिद्रता की दशा प्राप्त करता है, वह शरीर से स्थित होता हुआ भी मरा हुआ सा जीता है।

४१३. शुभ यत्नों से ही पुरुषों की पुरुषता सार्थक है। कार्य की सफलता तो दैवी विधान का अनुसरण करती है।

४१४. रत्न पाकर सत्पुरुष उतना सन्तोष नहीं पाता, जितना उसे आकांक्षा रखनेवाले सत्पुरुष को देकर प्रसन्न होता है।

४१५. काम करते समय प्राज्ञ और मूर्ख के शरीर समान रूप से लगते हैं, बुद्धि नहीं।

४१६. जब जड़ से वृक्ष को उखाड़ लिया तो डाल काटने में कौन श्रम रहा?

मृच्छकटिकम्

४१७. शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्। १.८
४१८. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते। १.१०
४१९. अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्। १.११
४२०. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। १.१३
४२१. रत्नं रत्नेन संगच्छते।१.३२
४२२. गुणः खल्वनुरागस्य कारणं न बलात्कारः। १.३२
४२३. निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम्। १.३७
४२४. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावच्चण्डो भवति। १.४२
४२५. चारित्र्येण विहीन आढ्योऽपि दुर्गतो भवति। १.४३
४२६. पुरुषेषु न्यासाः निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु। १.५६
४२७. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति। २.१४

---

४१७. अपुत्र का घर सुनसान है; जिसका मित्र नहीं, उसके लिए सदा सुनसान है।
४१८. दुःख का अनुभव कर लेने पर सुख की शोभा होती है।
४१९. मरने में थोड़ा दुःख है, दरिद्रता में अनन्त दुःख होता है।
४२०. भाग्य-क्रम से धन आते-जाते हैं।
४२१. रत्न रत्न के साथ मिलता है।
४२२. गुण अनुराग का कारण है, बलात्कार नहीं।
४२३. निर्धनता छठा महापातक है।
४२४. अपने घर में कुत्ता भी चण्ड बना रहता है।
४२५. चरित्रहीन धनी भी दुर्गति में पड़ता है।
४२६. पुरुष को देखकर उसके पास धरोहर रखी जाती है, घर को देखकर नहीं।
४२७. जिस जलाशय का पानी पिया नहीं जाता, उसमें अतिशय जल भरा रहता है।

४२८. स्वदोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः। ४.२
४२९. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्। ९.४१
४३०. गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्ति लभेते। १०.३६
४३१. सर्वत्रार्जवं शोभते। १०.४९

कालिदासः

रघुवंशम्

४३२. तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्। १.२
४३३. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा। १.१०
४३४. सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः। १.१८
४३५. फलानुमेयाः प्रारम्भाः। १.२०

---

४२८. मनुष्य अपने दोष से डरता रहता है।
४२९. जड़ से कट जाने पर वृक्ष का पालन कैसा?
४३०. आकाश में रहनेवाले चन्द्र और सूर्य भी विपत्ति में पड़ते हैं।
४३१. सीधापन सर्वत्र शोभा पाता है।

---

४३२. मोह के कारण डोंगी से सागर पार करने की इच्छा करता हूँ।
४३३. सोने की शुद्धि या मिलावट अग्नि में ही देखी जाती है।
४३४. सहस्रगुना लौटा देने के लिए सूर्य जल सोखता है।
४३५. फल से ही किये जाते हुए काम का अनुमान होना चाहिए।

४३६. प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ १.२४

४३७. सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे। १.६९

४३८. प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः। १.७९

४३९. अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्। २.४७

४४० क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः। २.५३

४४१. किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहम्
यशः शरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानाम्
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु॥ २.५७

४४२. यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः। ३.४८

---

४३६. प्रजा को विनय (शिक्षा) देने, रक्षा करने और भरण-पोषण करने से वह (दिलीप) उनका पिता था, उनके साधारण पिता केवल उनके जन्म देने वाले थे।

४३७. शुद्ध वंश की सन्तान इस लोक और परलोक में सुख के लिए होती है।

४३८. पूज्य की पूजा न करना श्रेय को (प्राप्त होने से) रोक देता है।

४३९. थोड़े के लिए बहुत अधिक त्याग की इच्छा करते हुए तुम (दिलीप) विचार-मूढ़ ज्ञात होते हो।

४४०. श्रेष्ठ क्षत्र शब्द भुवनों में विख्यात है—वह क्षत (हानि) से बचाता है।

४४१. यदि मेरी हिंसा करना ठीक नहीं समझते तो मेरे यशःशरीर के प्रति दया करो। हमारे जैसे लोग एकान्त विध्वंसशील (शरीर) पिण्ड के प्रति आस्था नहीं रखते।

४४२. यशस्वी लोगों के द्वारा शत्रुओं से यश की रक्षा होनी ही चाहिए।

४४३. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ३.६२

४४४. उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगात्।
शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिः जलस्य।। ५.५४

४४५. न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य।
वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदाली।। ६.६९

४४६. आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव। ४.८६

४४७. अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु। ८.४३

४४८. विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया। ८.४६

४४९. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः। ८.८७

कुमारसम्भवम्

४५०. पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवम्।
शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।। ५.४

---

४४३. गुण सर्वत्र प्रतिष्ठित होते हैं।

४४४. पानी की गर्मी आग की गर्मी से होती है, उसकी प्रकृति तो ठंडी ही है।

४४५. फूले हुए आम को पाकर भौंरों की पंक्ति दूसरे वृक्ष को नहीं चाहती।

४४६. सज्जनों के लिए आदान (वस्तुओं को ग्रहण करना) विसर्ग (दूसरों को दे देने) के लिए ही होता है जैसे बादलों का।

४४७. तपाये जाने पर लोहा भी नरम हो जाता है, शरीरधारियों की क्या बात?

४४८. ईश्वर की इच्छा से विष अमृत और अमृत विष हो जाता है।

४४९. शरीरधारियों के लिए मरना स्वावाविक है, जीना ही कृत्रिम है।

४५०. शिरीष का कोमल पुष्प भ्रमर के पदभार को वहन कर लेता है, पक्षी के (भार को) नहीं।

४५१. क इप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।। ५.४
४५२. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते। ५.१६
४५३. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसाम्
वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः। ५.३१
४५४. मनोरथानामगतिर्न विद्यते। ५.६४
४५५. द्विषन्ति मन्दाः चरितं महात्मनाम्। ५.७५
४५६. न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते। ५.८२
४५७. न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः सोऽपि पापभाक्।। ५.८३
४५८. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। ५.८६

मेघदूतम्

४५९. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। ५

---

४५१. अभीष्ट वस्तु के लिए स्थिर निश्चय वाले मन को और नीचे की ओर जाते हुए पानी को कौन उलट सकता है?
४५२. धर्म की दृष्टि से (आगे) बढ़े हुए लोगों की अवस्था नहीं देखी जाती।
४५३. समता में प्रतिष्ठित चित्तवाले लोगों का भी विशेष व्यक्तियों के प्रति अतिशय गौरवमय व्यवहार होता है।
४५४. मनोरथों की परिधि से बाहर कुछ भी नहीं है।
४५५. मन्द लोग महात्माओं के चरित के प्रति द्वेष रखते हैं।
४५६. कामवृत्ति आलोचना नहीं चाहती।
४५७. जो महापुरुषों की निन्दा करता है, केवल वही नहीं, जो उससे निन्दा सुनता है, वह भी पाप का भागी है।
४५८. क्लेश फल की प्राप्ति होने पर पुनः नयी स्फूर्ति ला देता है।
४५९. जिसे काम की पीड़ा होती है, वह चेतन और अचेतन के सम्बन्ध में स्वभावतः विवेकरहित होता है।

४६०. याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा। ६

४६१. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय।
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।। १७

४६२. रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय। २०

४६३. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः। ३८

४६४. आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्। ५३

४६५. के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः। ५४

४६६. सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्। ८०

४६७. प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा। ९३

---

४६०. गुणी जन से याचना करना अच्छा, चाहे वह विफल हो। अधम से नहीं, चाहे काम क्यों न बनता हो।

४६१. छोटे लोग भी पहले के उपकार का ध्यान करके मित्र के आश्रय के लिए आने पर विमुख नहीं होते—फिर ऊँचे लोगों का क्या कहना।

४६२. खाली होने पर सब कुछ छोटा होता है। पूर्णता गौरव के लिए होती है।

४६३. मित्रों का काम पूरा करने के लिए सन्नद्ध लोग कभी अपनी गति मन्द नहीं करते।

४६४. दुःखियों के दुःख को दूर करना ही एक मात्र फल है उत्तम लोगों की सम्पत्ति का।

४६५. निष्फल कामों के लिए यत्न करने वाले कौन नीचा नहीं देखते?

४६६. सूर्य के न होने पर कमल पूरी शोभा नहीं पाता।

४६७. मृदु हृदय वाले व्यक्तियों की चित्त-वृत्ति प्रायः करुणामयी होती है।

४६८. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।। १०८

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

४६९. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। १.१६
४७०. दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः। १.१७
४७१. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। १.१९
४७२. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। १.२१
४७३. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्। १.२४
४७४. सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति। २.१
४७५. स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ताः
तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति। २.७
४७६. श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्। ३.२

---

४६८. किस व्यक्ति को केवल सुख या दुःख मिला? चक्के की परिधि के क्रम से (भाग्य) ऊपर-नीचे आता जाता है।
४६९. भावी के लिए सर्वत्र द्वार खुला होता है।
४७०. गुणों के द्वारा उपवन की लताओं से वन की लतायें बढ़ गईं।
४७१. मधुर स्वरूप वालों के लिए क्या अलङ्करण नहीं है।
४७२. सन्देहपूर्ण स्थलों में सज्जनों की मानसिक वृत्तियाँ ही प्रमाण हैं।
४७३. बिजली भूतल से नहीं निकलती।
४७४. सब कुछ मेरे पक्ष में ही है—अहो कामी अपनी ही देखता है।
४७५. सूर्यकान्त मणि स्पर्शानुकूल होने पर भी दूसरे के तेज से आक्रान्त होने पर जलने लगती है।
४७६. लक्ष्मी का अभीष्ट क्योंकर अप्राप्य हो सकता है।

४७७. पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः। ४.६

४७८. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥ ५.७

४७९. जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव। ५.१२

४८०. तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति। ५.१४

४८१. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः। ५.२४

४८२. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥ ६.२८

४८३. प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः। ६.३१

---

४७७. कन्या के वियोग के अभिनव दुःख से कुटुम्बी लोग क्यों न दुःखी हों।

४७८. वृक्ष स्वयं शिरोभाग से प्रखर उष्णता का अनुभव करता है और आश्रय लेने वालों के ताप को शान्त करता है।

४७९. लोगों से भरा घर मानो जल रहा है।

४८०. सूर्य के तपने पर अन्धकार कहाँ से आयेगा ?

४८१. अतएव बहुत विचार करके अकेले में साथ करे।

४८२. हंस दूध को ग्रहण कर लेता है, उसमें मिले पानी को छोड़ देता है।

४८३. क्षोभ के कारण प्रायः लोग अपनी महिमा के वास्तविक स्तर तक ऊँचे उठते हैं।

४८४. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता,
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् । ७.४

४८५. पूर्वावधीरितं श्रेयः दुःखं हि परिवर्धते। ७.१३

४८६. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धिनोत्यहिशङ्कया । ७.२४

विक्रमोर्वशीयम्

४८७. यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः॥ ३.२१

४८८. कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिंजितम्। ४.३०

४८९. उत्सङ्गवर्धितानां गुरुषु भवेत्कीदृशः स्नेहः। ५.१०

४९० परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्॥ ५.२४

---

४८४. क्या अरुण अन्धकार को दूर करने वाला होता, यदि सहस्र किरणों वाला (सूर्य) उसे आगे न लगा देता।

४८५. पहले का ठुकराया हुआ श्रेय दुःख को बढ़ाता है।

४८६. अन्धा शिर पर डाली हुई माला को साँप समझ कर फेंक देता है।

---

४८७. दुःख के पश्चात् जो सुख आता है, वह अधिक आनन्दमय होता है, जैसे धूप से जले हुए को वृक्ष की छाया शान्ति देती है।

४८८. यह राजहंसों का कूजन है, नूपुर ध्वनि नहीं है।

४८९. गोद में बढ़े हुए बालकों का माता-पिता के प्रति कितना प्रेम होता है।

४९०. परस्पर विरोधिनी श्री और सरस्वती का एक ही पुरुष में साथ होना कठिन है, वे ही दोनों सज्जनों के कल्याण के लिए साथ रहें।

मालविकाग्निमित्रम्

४९१. पुराणमित्येव न साधु सर्वम्। १.२

४९२ मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः। १.२

४९३ पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य॥ १.६

विष्णुपुराणम्

४९४ मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः। १.१.१७

४९५ क्षमासारा हि साधवः। १.१.२०

४९६ यतः सत्त्वं ततो लक्ष्मीः सत्त्वं भूत्यनुसारि च।
निःश्रीकाणां कुतः सत्त्वं विना तेन गुणाः कुतः॥ १.९.२९

४९७. सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः॥ १.११.२४

---

४९१. प्राचीन है अतएव सब कुछ ठीक है—ऐसा नहीं।

४९२. मूर्ख दूसरों के विश्वास से अपना मत रखते हैं।

४९३. सिखानेवाले आचार्य की कला उच्च कोटि के विद्यार्थी में प्रतिष्ठित होकर विशेष गुणवती होती है, जैसे समुद्र की सीपी में पड़ा बादल का जल मोती बन जाता है।

---

४९४. मूर्खों को ही क्रोध होता है, ज्ञानियों को नहीं।

४९५. साधुओं का बल है क्षमा।

४९६. जहाँ सत्त्व वहीं लक्ष्मी। सत्त्व लक्ष्मी का अनुसरण करता है। लक्ष्मीरहित के सत्त्व कहाँ? सत्त्व के बिना गुण कहाँ?

४९७. सुशील बनो, धर्मात्मा, सबके मित्र, प्राणियों का हित करने में तत्पर बनो। जैसे पानी नीचे की ओर बहता है, वैसे ही सम्पत्तियाँ पात्र को आश्रय बना लेती हैं।

४९८. बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः।
अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्धकं समुपस्थितम्॥ १.१७.७५

४९९. तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्॥

५००. अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषां ह्यतोऽन्याभोगभूमयः॥ २.३.२२

५०१. गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥ २.३.२४

५०२. वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः॥ २.६.४५

५०३. मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्। ३.८.२७

---

४९८. बाल्यावस्था में खेल में आसक्त रहते हैं, युवावस्था में विषय-भोग में प्रवृत्त होते हैं और वृद्धावस्था के उपस्थित होने पर उसे असमर्थ होकर बिताते हैं।

४९९. कर्म वही है जो (पुनर्जन्म) बन्धन के लिए न हो। वही विद्या है, जो मुक्ति के लिए हो। इसके अतिरिक्त कर्म प्रयास मात्र है और दूसरी विद्यायें शिल्पनैपुण्यमात्र हैं।

५००. हे महामुनि, जम्बूद्वीप में भारतवर्ष सबसे अच्छा है क्योंकि यह कर्मभूमि है और इसके अतिरिक्त शेष भोगभूमि है।

५०१. देवता गीत गाते हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारत-भूमिभाग में लोग देवताओं की अपेक्षा अधिक धन्य हैं।

५०२. एक ही वस्तु दुःख, सुख, ईर्ष्या, कोप आदि के लिए होती है, अतः वस्तु की वस्तुता कहाँ रही?

५०३. सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव ही ब्राह्मण का उत्तम धन है।

५०४. अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित्॥ ३.९.३१

५०५. अदत्त्वा विषमश्नुते। ३.११.७२

५०६. नासमञ्जसशीलैस्तु सहासीत कथञ्चन।
सद्वृत्तसन्निकर्षो हि क्षणार्धमपि शस्यते॥ ३.१२.२१

५०७. नारभेत कलिं प्राज्ञश्शुष्कवैरं च वर्जयेत्।
अप्यल्पहानिस्सोढव्या वैरेणार्थागमं त्यजेत्॥ ३.१२.२३

५०८. योषितो नावमन्येत। ३.१२.३०

५०९. सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः।
पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः।
मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥ ३.१२.४१

५१०. तस्मात् सत्यं वदेत्प्राज्ञो यत्परप्रीतिकारणम्।
सत्यं यत्परदुःखाय तदा मौनपरो भवेत्॥ ३.१२.४३

---

५०४. जो मुनि सभी प्राणियों को अभयदान करके पर्यटन करता है, उसे सभी प्राणियों से कहीं भय नहीं रहता।

५०५. बिना दान किये हुए जो भोजन करता है, वह विष खाता है।

५०६. संशय में पड़े लोगों के साथ कभी न बैठे। सदाचारियों का आधे क्षण का साथ भी प्रशंसनीय है।

५०७. विद्वान् झगड़े में न पड़े। व्यर्थ वैर से अलग रहे। थोड़ी हानि सह ले। वैर से धन की प्राप्ति हो तो भी उसे छोड़े।

५०८. स्त्रियों का अपमान न करे।

५०९. सदाचारनिष्ठ, विद्या-विनय वाला और पापी के प्रति भी निष्पाप जो विद्वान् कठोर के उत्तर में भी प्रिय बोलता है, जिसका हृदय मैत्रीभाव से द्रवित है, उसके हाथ में ही मुक्ति रहती है।

५१०. वही सत्य कहना चाहिए जो दूसरों की प्रसन्नता का कारण हो। जो सत्य दूसरों के दुःख के लिए हो, उसके सम्बन्ध में मौन रहे।

५११. प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत्।
श्रेयस्तत्र हितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम्।। ३.१२.४४

५१२. प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत्।। ३.१२.४५

५१३. योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः।
भ्रमन्ति पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः।। ३.१५.२३

५१४. समुल्लङ्घ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम्। ३.१७.२

५१५. विद्यया यो यथा युक्तस्तस्य सा दैवतं महत्।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका।। ५.१०.३०

भागवतम्

५१६. ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा। १.६.७

५१७. यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह।
इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम्।। १.१३.४२

---

५११. प्रिय होने पर भी जो हितकर न हो उसे न कहे। अच्छा है हितकर कहना यद्यपि वह अत्यन्त अप्रिय हो।

५१२. प्राणियों का उपकार करने के लिए जो कुछ इस लोक और परलोक में हो, उसे ही बुद्धिमान् कर्म, मन और वाणी से करे।

५१३. लोगों का उपकार करने वाले योगी विविध रूपों से इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं। उनके स्वरूप ज्ञात नहीं रहते।

५१४. सदाचार का उल्लंघन करके कोई कल्याण नहीं पा सकता।

५१५. जो जिस विद्या से युक्त है, वही उसके लिए परम देवता है। वह पूज्य और अर्चनीय है और वही उसके लिए उपकारिका है।

५१६. ईश्वर के वश में सभी लोग हैं, जैसे कठपुतली।

५१७. जैसे खिलाड़ी की इच्छा से खिलौनों का संयोग और वियोग होता है, वैसे ही ईश्वरेच्छा से लोगों का (मिलना और बिछुड़ना है।)

५१८. एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः १.१७.११

५१९. सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैः
बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम्।
सत्यञ्जलौ किं पुरुधान्यपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः।। २.२.४

५२०. सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान्।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम्।। ३१.४.१७

५२१. यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः। ३.१८.१२

५२२. विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ।। ४.३.१७

---

५१८. राजाओं का यह परम धर्म है कि दुःखियों का दुःख दूर करें।

५१९. पृथ्वी है ही तो पलंग के लिए प्रयत्न क्यों? बाँह है तो तकियों से क्या प्रयोजन? अञ्जलि है तो बहुत से पात्रों की क्या आवश्यकता और दिगम्बर और वल्कल है तो कौशेय वस्त्रों से क्या?

५२०. जिस प्रकार जलयान से समुद्र पार करते हैं, वैसे ही सभी आश्रमों का भरण करते हुए गृहस्थ अपने आश्रम से दुःख के समुद्र के पार जाता है।

५२१. जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता, वह असभ्य है।

५२२. सज्जनों के लिए गुण-स्वरूप—विद्या, तप, धन, शरीर, युवावस्था और उच्चकुल—ये छः दुष्टों के लिए दुर्गुण हैं, जिनके कारण विवेक के नष्ट होने पर अभिमानी और दोषपूर्ण दृष्टिवाले होकर वे ठीक तरह महापुरुषों की तेजस्विता को नहीं देख पाते।

५२३. गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते।। ४.८.३४

५२४. कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात्।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः।। ४.१३.४६

५२५. स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि।
लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते।। ४.२३.२८

५२६. सर्वे वहामो बलिमीश्वराय।
प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः। ५.१.१४

५२७. जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य
गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम्। ५.१.१७

५२८. यद् यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः। ५.४.१५

---

५२३. अपने से अधिक गुणवालों से आनन्द प्राप्त करे, कम गुणवालों के प्रति दयाभाव रखे और समान गुणवालों से मित्रता रखे—ऐसा पुरुष सन्तापों से व्यथित नहीं होता।

५२४. मैं तो कुपूतों को सपूत से अच्छा मानता हूँ। सपूत के कारण शोक होता है। कुपूत के क्लेशों की अधिकता से घर ऐसा दुःखद हो जाता है कि उसे छोड़कर लोग मोक्ष-पथ की ओर जाते हैं।

५२५. अतिशय कठिनता से पृथ्वी पर मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन-रूप मानव शरीर पाकर यदि विषयों के प्रति कोई आसक्त हुआ तो वह आत्मद्रोही ठगा ही गया।

५२६. हम सभी ईश्वर के लिए बलि वैसे ही वहन करते हैं, जैसे रस्सी से नथा हुआ पशु मनुष्य के लिए।

५२७. आत्मा में आनन्द देनेवाले जितेन्द्रिय विद्वान् का गृहस्थाश्रम में रहना क्या बुराई करता है?

५२८. प्रधान जैसा-जैसा आचरण करता है, वैसा ही वैसा लोग अनुवर्तन करते हैं।

५२९. अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः
कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ।। ५.६.१३

५३०. महद्भिचारातिक्रमः कात्स्न्येंनात्मने फलति। ५.९.१९

५३१. सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि
सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हति। ५.१०.५

५३२. योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः
कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः।। ५.१०.२०

५३३. स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य। ५.१०.२३

५३४. अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनम्। ५.१३.२१

५३५. गृहस्थाश्रमः कर्मक्षेत्रम्। यस्मिन्नहि कर्माण्युत्सीदन्ति
यदयं कामकरण्ड एष आवसथः।। ५.१४.४

५३६. एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम्। ६.५.४४

---

५२९. अहो! सात समुद्रवाली पृथ्वी के द्वीपों और वर्षों में यह (भारत) सर्वाधिक पुण्य भूमि है जहाँ के लोग कृष्ण के सावतार कल्याणमय पराक्रमों का गायन करते हैं।

५३०. महात्माओं के प्रति किया गया अत्याचार पूरी तरह अपने ऊपर पड़ता है।

५३१. संसर्ग से उत्पन्न होनेवाले दोष एक के भी होने पर सभी साथियों के हो सकते हैं।

५३२. घर में आसक्त रहनेवाला मन्द बुद्धि योगेश्वरों की गति कैसे जान सकता है?

५३३. अपना धर्म ही भगवान् की पूजा है।

५३४. अहो! मनुष्य-जन्म सभी जन्मों से उत्कृष्ट है।

५३५. गृहस्थाश्रम कर्मक्षेत्र है। इसमें कर्मों का सर्वथा विनाश नहीं, अतएव कामनाओं की पिटारी है यह गृहावास।

५३६. वही साधुता है कि स्वयं समर्थ होते पर [illegible]

५३७. द्वौ सम्मताविह मृत्यू दुरापौ
यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्
यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः॥ ६.१०.१३

५३८. आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः॥ ६.१२.१३

५३९. ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः। ६.१३.११

५४०. यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे। ६.१४.२०

५४१. यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः॥ ६.१५.३

५४२. नारायणपराः सर्वे न कुतश्च न बिभ्यति। ६.१७.२८

५४३. न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा।
आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः॥ ६.१७.२३

---

५३७. दो प्रकार की दुर्लभ मृत्यु सम्मानित हैं—(१) प्राणों को वश में करके योगी ब्रह्म की धारणा करते हुए शरीर को छोड़े और (२) युद्ध-भूमि में नेता बन कर वीर शयन करे।

५३८. आयु, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य आदि पुरुष को उसी प्रकार बिना चाहे प्राप्त होते हैं जैसे इनके विपरीत वस्तुएँ न चाहने पर भी प्राप्त होती हैं।

५३९. संकोची पुरुष को कलङ्क लगने पर उसके गुण सुख नहीं दे पाते।

५४०. जिसके वश में आत्मा हो, उसके वश में सब कुछ है।

५४१. जैसे सोते के वेग से बालू के कण जुड़ते और बिछुड़ते हैं, वैसे ही काल के प्रवाह में शरीरधारी मिलते और बिछुड़ते हैं।

५४२. भगवत्परायण लोग कहीं किसी से नहीं डरते।

५४३. भगवान् का कोई प्रिय, अप्रिय अपना या पराया आदि नहीं है। उनके लिए सभी प्राणी प्रिय हैं, क्योंकि वे सबकी आत्मा हैं।

५४४. क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा।
स्वपराभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम्॥ ७.३.६०

५४५. यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद्वा
दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः।
विमोचितुं कामदृशां विहार—
क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः॥ ७.६.१७

५४६. वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा। ७.१०.३०

५४७. यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्। ४.१४.८

५४८. सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम्॥ ७.१५.१७

५४९. अरयोऽपि हि सन्धेया सति कार्यार्थगौरवे। ८.६.२८

---

५४४. कौन अपना है और कौन पराया है—देहधारियों को ज्ञान के बिना यह अपने और पराये का दुराग्रह होता है।

५४५. चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो—यदि उस गरीब ने अपने को कामिनियों के मनोरञ्जन का सामान उनका क्रीडामृग बना लिया है और सन्तान की बेड़ी पहन ली है तो वह अपना उद्धार नहीं कर सकता।

५४६. क्रूर स्वभाववालों के लिए वर वैसा ही होता है, जैसे साँप के लिए अमृत ।

५४७. जितने धन से पेट भर जाय, उतना ही शरीरधारियों का अपना है।

५४८. सन्तुष्ट मनवाले के लिए सदा सभी दिशाएँ सुखमयी हैं जैसे जूता पहननेवाले के लिए कंकड़ और काँटे आदि से दुःख नहीं होता।

५४९. किसी महान् कार्य को करने के प्रसङ्ग में शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिए।

५५०. न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा।
८.६.२४

५५१. तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥ ८.७.४४

५५२. स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः। ८.८.२०

५५३. अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः। ८.१९.१३

५५४. धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ ८.१९.३७

५५५. न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्॥ ८.२०.४

५५६. न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् पराम्
अष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजाम्
अन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥ ९.२१.१२

---

५५०. क्रोध से सब काम वैसे नहीं बनते जैसे शान्ति से।

५५१. अच्छे पुरुष दूसरों के सन्ताप से सन्तप्त रहते हैं। यही उनके लिए परमात्मा की सर्वोच्च आराधना है।

५५२. वह ऐश्वर्यशाली ही क्या, जो दूसरों का आश्रय ले?

५५३. क्रोध अज्ञान से उत्पन्न होता है और अहंकार से बढ़ता है।

५५४. धर्म, यश, अर्थ, काम और अपने लोगों के लिए—पाँच भागों में सम्पत्ति को बाँट लेने वाला इस लोक और परलोक में प्रमुदित होता है।

५५५. पृथ्वी ने कहा है—असत्य से बढ़कर दूसरा अधर्म नहीं है। सब कुछ सह सकती हूँ—झूठे का भार नहीं।

५५६. रन्तिदेव ने कहा है—मैं ईश्वर से आठों ऋद्धियों से युक्त परम गति नहीं चाहता हूँ, मोक्ष भी नहीं चाहता। चाहता हूँ कि सभी देहधारियों का दुःख मेरे ऊपर आ पड़े, मैं उनके हृदय में स्थित हो जाऊँ, जिससे वे दुःखरहित हो जायँ।

५५७. किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम्।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम्॥ १०.१.५८

५५८. स एष जीवन् खलु सम्परेतो
वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन।
देहे मृते तं मनुजा शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम्॥ १०.२.२२

५५९. नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम्।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा॥ १०.५.२५

५६०. पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते॥ १०.६.२८

५६१. अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित्।
१०.११.५७

---

५५७. सज्जनों की सहन शक्ति से परे कुछ भी नहीं है। विद्वानों को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। नीच पुरुष को न करने योग्य काम का विचार नहीं होता। अपने को वश में रखने वालों के लिए कोई वस्तु अपरित्याज्य नहीं रह जाती।

५५८. जो पुरुष अति नीच व्यवहार करे, वह जीते जी मरा है। उसके शरीरतः मरने पर लोग उसे गाली देते हैं। वह निश्चय ही देहाभिमानियों के योग्य अन्धकार में जाता है।

५५९. विभिन्न कर्मों वाले मित्रों की एक स्थान पर अभीष्ट स्थिति नहीं हो सकती, जैसे सोते के वेग से बगराये जाते हुए मेंढकों की।

५६०. पुरुषों का धर्म, अर्थ और काम--त्रिवर्ग मित्रों के सुख के लिए है। यदि मित्रों को क्लेश हो तो त्रिवर्ग व्यर्थ रहा।

५६१. वास्तव में ब्रह्मवेत्ताओं की वाणी कभी असत्य नहीं होती है।

५६२. ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्॥ १०.३३.३२

५६३. न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥ १०.४८.३१

५६४. एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥ १०.५९.२९

५६५. एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः॥ १०.५४.४४

५६६. अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया।
आरुरुक्षत्युपानद् वै शिरो मुकुटसेवितम्॥ १०.५८.२४

---

५६२. ईश्वर (शङ्कर, कृष्ण आदि) की बातें सत्य हैं। उन्हीं के अनुरूप आचरण करना चाहिए। उनका आचरण सदा सत्य नहीं होता। उनका जो आचरण उन्हीं के उपदेश के अनुरूप हो, उसी आचरण को स्वीकार करे।

५६३. पानी के तीर्थ, मिट्टी और पत्थर के बने देवता तो बहुत दिनों में पवित्र करते हैं। साधु दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं।

५६४. प्राणी अकेले जन्म लेता और मरता है। वह अकेले ही पुण्य और पाप का फल भोगता है।

५६५. सभी देहधारियों का एक ही आत्मा परम है। मूर्खों को वही नाना दिखाई देता है जैसे, ज्योति और आकाश।

५६६. सचमुच यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि काल की अमिट गति से कभी मुकुटसेवित शिर पर जूता चढ़ना चाहता है।

५६७. योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम्।
नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः॥
१०.७२.२०

५६८. सन्निकर्षो हि मर्त्यानामनादरणकारणम्।
गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये॥ १०.८४.३१

५६९. भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च। ११.२.५

५७०. नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैः चलैः॥ ११.३.१९

५७१. धनं च धर्मैकफलं यतो वै
ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्तिः। ११.५.१२

✓ ५७२. आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते॥ ११.७.२०

---

५६७. जो पुरुष स्वयं समर्थ होकर भी अपने अनित्य शरीर से ऐसा यश नहीं कमा लेता, जो सज्जनों के लिए भी प्रशंसनीय हो, वह निन्दनीय है, वह शोच्य है।

५६८. बहुत पास रहना मनुष्यों के अनादर का कारण होता है। गङ्गा तटवासी गंगाजल को छोड़कर दूसरे जल के पास अपनी शुद्धि के लिए जाते हैं।

५६९. देवताओं का चरित्र प्राणियों के दुःख और सुख—दोनों के लिए होता है।

५७०. नित्य ही दुःख देनेवाले, दुर्लभ और आत्मा की मृत्यु रूप धन से, गृह-अपत्य-सम्बन्धी और पशुओं से क्या प्रेम होना चाहिए जो नश्वर हैं?

५७१. धन का फल है धर्म, जिससे ज्ञान, विज्ञान और शान्ति मिले।

५७२. अपना गुरु स्वयं प्राणी ही होता है, विशेषकर पुरुष के लिए क्योंकि वह प्रत्यक्ष और अनुमान से श्रेय को जान लेता है।

५७३. अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः॥ ११.८.१०

५७४. निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः। ११.८.२८

५७५. आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्॥ ११.८.४४

५७६. परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तसुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः॥ ११.९.१

५७७. द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः॥ ११.९.४

५७८. न ह्यकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम्।
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः॥ ११.९.३१

५७९. किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितम्॥ ११.१९.४५

---

५७३. कुशल व्यक्ति छोटे-बड़े शास्त्रों से सब प्रकार वैसे ही सार ग्रहण करे जैसे भौंरा फूलों से।

५७४. पुरुष के लिए आशा-पाश को काटने के लिए वैराग्य ही तलवार है।

५७५. आशा ही परम दुःख और निराशा का भाव परम सुख है।

५७६. सबसे अधिक अच्छी लगनेवाली वस्तुओं का परिग्रह ही पुरुष के लिए दुःखदायी है। जो अकिञ्चन है, वह विद्वान् अनन्त सुख पाता है।

५७७. परमानन्द में लीन दो ही तो चिन्तारहित हैं—(१) विमूढ़ जड बालक और (२) गुणों के परे पहुँचा हुआ (संन्यासी)।

५७८. अकेले गुरु से स्थिर और पूर्ण ज्ञान नहीं होता। एक अद्वितीय ब्रह्म को विभिन्न ऋषियों ने अनेक प्रकार बताया है।

५७९. गुण और दोष के लक्षण क्या बहुत बताये जायँ ? गुण और दोष दोनों की ओर दृष्टि जाना ही दोष है और गुण है दोनों से अलग रहना।

किरातार्जुनीयम्

५८०. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। १.४

५८१. वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। १.८

५८२. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता। १.२३

५८३. व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवम्
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्
असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः॥ १.३०

५८४. अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः १.३३

५८५. परैरपर्यासितवीर्यसम्पदाम्
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्॥ १.४१

---

५८०. हितकर और मनोरम बात दुर्लभ होती है।

५८१. महात्माओं से विरोध भी हो तो अच्छा ही है।

५८२. अहो, बलवानों से विरोध करने का परिणाम अच्छा नहीं होता।

५८३. विचारहीन बुद्धिवाले ऐसे लोग विपत्ति में पड़ते हैं, जो मायावी लोगों के साथ मायावी नहीं बन जाते । शठ लोग ऐसे लोगों को आत्मीय बनकर वैसे ही मार डालते हैं, जैसे कवचरहित शरीर वालों को प्रखर बाण।

५८४. जिसका क्रोध निष्फल होता है और जो विपत्तियों को दूर कर देने वाला है, उसके वश में लोग अपने आप होते हैं।

५८५. शत्रुओं के द्वारा जिनकी शक्ति-सम्पत्ति का तिरस्कार नहीं हुआ है, ऐसे मानियों की विपत्ति भी उत्सव के लिए होती है।

५८६. व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः। १.४२

५८७. स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः। २.३

५८८. ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः। २.५

५८९. निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः। २.१५

५९०. लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः। २.१८

५९१. अभिमानधनस्य गत्वरैः
असुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः।
अचिरांशुविलासचंचला
ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् ॥ २.१९

---

५८६. निस्पृह मुनि शत्रुओं की उपेक्षा करके शान्ति से सफलता प्राप्त करते हैं। किन्तु राजा नहीं।

५८७. ऐसे लोग बहुत ही कठिनाई से मिलते हैं, जो कार्य-विधि का चारुतापूर्वक निर्माण करते हैं।

५८८. गुण से भरी हुई बातें अपना लेनी ही चाहिए, उनका कहनेवाला कोई भी क्यों न हो।

५८९. सम्पत्तिशालिता पराक्रम का आश्रय लेकर रहती है, विषाद के साथ नहीं।

५९०. सारे संसार को तेज से तुच्छ बनाते हुए महापुरुष दूसरे से वृद्धि की कामना नहीं करते।

५९१. गमनशील प्राणों से स्थायी यश का संग्रह करने की इच्छा रखने वाले और अभिमान को धन मानने वाले लोगों के लिए विद्युद्विलास की भाँति चंचल लक्ष्मी की प्राप्ति गौण रूप से ही होती है।

५९२. ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः ॥
२.२०

५९३. प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यथा। २.२१

५९४. सहसा विदधीत न क्रियाम-
विवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥ २.३०

५९५. क्व चिराय परिग्रहः श्रियाम्
क्व च दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता।
शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैः
असुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः॥ २.३९

५९६. विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः। २.५२

---

५९२. लोग राख के ढेर को रगड़ देते हैं। किन्तु जलती हुई आग को नहीं। अतः मानी लोग परिभव के भय से सुखपूर्वक प्राण तो छोड़ देते हैं, किन्तु तेजस्विता नहीं छोड़ते।

५९३. यह महापुरुषों का स्वभाव ही है कि दूसरों की उन्नति नहीं सह पाते।

५९४. सहसा कार्य न करे। अविवेक विपत्तियों को आश्रय देता है। विचारशील पुरुष को गुण से प्रेम करनेवाली सम्पत्तियाँ स्वयं चुन लेती हैं।

५९५. लक्ष्मी का चिरकालीन स्वायत्तीकरण कहाँ हुआ और दुष्ट घोड़े के समान इन्द्रियों को वश में करना कहाँ सम्भव है? शरद् ऋतु के बादलों की भाँति चञ्चल, छलनामयी लक्ष्मी का चञ्चल इंद्रियों से सुरक्षित कर लेना असम्भव ही है।

५९६. अविनयी लोगों की सम्पत्तियों का अन्त विपत्ति में होता है।

५९७. वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजाम्
भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः। ३.१२

५९८. मोहं विधत्ते विषयाभिलाषः। ३.१३

५९९. प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः। ३.१७

६००. विश्वासयत्याशु सतां हि योगः। ३.३१

६०१. निरुत्सुकानामभियोगभाजाम्
समुत्सुकेवाङ्कमुपैति सिद्धिः। ३.४०

६०२. मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि
स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि॥ ३.५३

६०३. न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्। ४.२३

६०४. प्रायेण सत्यपि हितार्थकरे विधौ हि,
श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः। ५.४९

६०५. कमिवेशते रमयितुं न गुणाः। ६.२४

---

५९७. मुक्ति चाहने वाले विरक्त लोगों का भी अच्छे लोगों के प्रति पक्षपात होता है।

५९८. विषयों के प्रति आसक्ति मोह उत्पन्न करती है।

५९९. युद्ध में विजयश्री उच्चतर शक्ति वालों की ही होती है।

६००. सज्जनों का मिलना विश्वास उत्पन्न कर ही देता है।

६०१. निष्काम होकर नित्य पराक्रम करने वालों की गोद में उत्सुक होकर सफलता आती ही है।

६०२. राग और द्वेष से दूषित सभाव वाले लोगों के मन सज्जनों के विषय में भी विकारपूर्ण हो जाते हैं।

६०३. स्वभावतः सुन्दर वस्तु आरोप्यमाण गुण की अपेक्षा नहीं रखती।

६०४. प्रायः हितकर विधि-विधानों के होने पर भी बाधाओं के बिना श्रेय प्राप्त करना असम्भव होता है।

६०५. गुण किसे प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होते? अर्थात् सभी को वश में कर लेते हैं।

६०६. किमिवावसादकरमात्मवताम्। ६.१९
६०७. रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति। ७.५
६०८. युक्तानां खलु महतां परोपकारे
कल्याणी भवति रुजत्स्वपि प्रवृत्तिः। ७.१३
६०९. नाल्पीयान् बहु सुकृतं हिनस्ति दोषः। ७.१५
६१०. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि। ८.३७
६११. लंघ्यते न खलु कालनियोगः। ९.१३
६१२. वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः। ९.१६
६१३. दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम्। ९.३०
६१४. प्राप्यते गुणवतापि गुणानां व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः। ९.५८
६१५. न हि महतां सुकरः समाधिभङ्गः। १०.२३

---

६०६. मनस्वियों के लिए कौन-सी वस्तु अशान्तिजनक है। अर्थात् कुछ भी नहीं।
६०७. जो स्वभावतः सुन्दर है, उनकी विकृति भी शोभाधायक होती है।
६०८. परोपकार में लगे हुए सज्जनों की प्रवृत्ति पीड़ा के समय भी कल्याणमयी होती है।
६०९. थोड़ा दोष अतिशय उपकार को नहीं मिटाता।
६१०. गुण प्रेम में रहते हैं, वस्तु में नहीं।
६११. दैवाज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता।
६१२. सभी निरापद स्थान में रहना चाहते हैं।
६१३. मन के दुःखी होने पर सब कुछ असह्य होता है।
६१४. गुणवानों के द्वारा भी गुणों का वैशिष्टच आश्रय की अधीनता के अनुसार पाया जाता है।
६१५. महापुरुषों की समाधि भङ्ग कर देना सरल नहीं।

६१६. प्रभवति न तदा परो विजेतुम्
भवति जितेन्द्रियता यदात्मरक्षा। १०.३५

६१७. ननु करुणामृदु मानसं मुनीनाम्। १०.५१

६१८. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः। ११.८

६१९. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्। ११.११

६२०. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः। ११.१२

६२१. या गम्या सत्सहायानां यासु खेदो भयं यतः।
तासां किं यन्न दुःखाय विपदामिव सम्पदाम्॥ ११.२२

६२२. नान्तरज्ञाः श्रियो जातु प्रियैरासां न भूयते।
आसक्तास्तास्वमी मूढा वामशीला हि जन्तवः॥ ११.२४

---

६१६. जब जितेन्द्रियता ही अपनी रक्षा करे तो शत्रु जीत नहीं सकता।
६१७. मुनियों का मन करुणा से मृदु होता है।
६१८. बन्धु के अनजान होने पर भी (उसके मिलने पर) चित्त प्रसन्न होता है।
६१९. संसार में रम्य आकार तो सुलभ है, किन्तु गुण की प्राप्ति दुर्लभ है।
६२०. विषयभोग तत्काल ही रमणीय प्रतीत होते हैं। वे अन्त में परिताप पहुँचाते हैं।
६२१. सम्पत्तियाँ उन्हीं के द्वारा प्राप्तव्य हैं, जिनके पास साधन हैं। जिनमें खेद है, जिनसे भय है, उन सम्पत्तियों का कौन-सा ऐसा पक्ष है, जो विपत्तियों की भाँति दुःखदायी न हो?
६२२. श्री (सम्पत्ति) नीच और ऊँच नहीं समझती। उसका कोई प्रिय नहीं होता। ये मूढ लोग उसी श्री में अनुराग करते हैं। ऐसे जन्तु वामशील हैं।

६२३. शून्यमाकीर्णतामेति तुल्यं व्यसनमुत्सवैः ।
विप्रलम्भोऽपि लाभाय सति प्रियसमागमे ।। ११.२७

६२४. न्यायाधारा हि साधवः। ११.३०

६२५. श्रद्धेया विप्रलब्धारः प्रिया विप्रियकारिणः।
सुदुस्त्यजास्त्यजन्तोऽपि कामाः कष्टा हि शत्रवः। ११.३५

कादम्बरी

६२६. कटु क्वणन्तो मलदायकाः खला-
स्तुदन्त्यलं बन्धनश्रृंखला इव।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे
हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव।।

६२७. किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्।

---

६२३. अभीष्ट पुरुष के मिलने पर शून्य स्थान भरा-भरा सा बन जात
है, विपत्ति भी उत्सव के तुल्य हो जाती है। उनसे विवाद भ
लाभ के लिए होता है।

६२४. सज्जन न्याय का अवलम्बन करते हैं।

६२५. काम (विषय-भोगों) से श्रद्धा करो तो वे ठगते हैं, प्रेम करो त
वे हानि पहुँचाते हैं, छोड़ना चाहो तो छूटते नहीं। वे कष्टप्र
शत्रु हैं।

६२६. कड़वी बात बोलने वाले तथा मिथ्या कलङ्क ढूँढ़ने वाले खल
बाँधने की सांकल की भाँति अत्यन्त दुःख देते हैं। सज्जन
लोग अच्छी वाणी से पद-पद पर मन को वैसे ही प्रसन्न कर देते
हैं जैसे मणिजटित नूपुर प्रत्येक पादक्षेप पर मन को आनन्द
पहुँचाता है।

६२७. दयाहीन लोगों के लिए क्या करना कठिन है ?

६२८. अनाथपरिपालनं हि धर्मोऽस्मद्विधानाम्।

६२९. न हि शक्यं दैवमन्यथा कर्त्तुमभियुक्तेनापि।

६३०. अमोघफला हि महामुनिसेवा भवति।

६३१. आवेदयन्ति हि प्रत्यासन्नमानन्दमग्रजातानि शुभानि निमित्तानि।

६३२. विपद्विपदं सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति।

६३३. अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

६३४. नास्ति खल्वसाध्यं नाम तपसाम्।

६३५. स्वल्पाप्येकदेशावस्थाने कालकला परिचयमुत्पादयति।

६३६. बलवती हि द्वन्द्वानां प्रवृत्तिः।

६३७. प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसवः ।

६३८. आशया हि किमिव न क्रियते।

---

६२८. अनाथों का परिपालन ही हमारे जैसे लोगों (मुनियों) का धर्म है।

६२९. महायोगियों के द्वारा भी दैव को बदला नहीं जा सकता।

६३०. महामुनियों की सेवा का फल अवश्य मिलता है।

६३१. निकट भविष्य में आने वाले आनन्द की सूचना पहले से ही प्रकट होने वाले माङ्गलिक निमित्त देने लगते हैं।

६३२. विपत्ति के पीछे विपत्ति और सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति आती है।

६३३. स्फटिक मणि की भाँति मन के निर्मल होने पर गुरु का उपदेश-गुण चन्द्रकिरणों की भाँति सरलता से प्रवेश करता है।

६३४. तपस्या से कोई भी काम असाध्य नहीं है।

६३५. थोड़ा समय भी एक साथ रहने पर परिचय उत्पन्न कर देता है।

६३६. द्वन्द्वों (सुख-दुःख) की प्रवृत्ति बलिष्ठ होती है।

६३७. प्राण देकर भी मित्र के प्राण की रक्षा करनी चाहिए।

६३८. आशा से क्या नहीं किया जाता ?

६३९. अचिन्त्यो हि महात्मनां प्रभावः।

६४०. दुःखितमपि जनं रमयन्ति सज्जनसमागमः।

हर्षः

६४१. गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति।
प्रियदर्शिका

६४२. प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महतः।
मत्तेभकुम्भतटगतमेति हि शृङ्गारतां भस्म॥ प्रिय० ३.१

६४३. सदृशाः सदृशे रज्यन्ते। प्रिय०

६४४. द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः॥
रत्नावली १.५

६४५. घुणाक्षरमपि कदापि सम्भवति। रत्नावली

---

६३९. महात्माओं का प्रभाव सोचने की सीमा से परे होता है।
६४०. दुःखी पुरुष को भी सज्जनों का समागम प्रसन्न कर देता है।
६४१. केवल गुणों का ही पक्षपात करने वाले लोगों के लिए शत्रुओं के गुण भी प्रीति उत्पन्न करते हैं।
६४२. छोटी वस्तु भी महान् का आश्रय पाकर उत्कर्ष ग्रहण करती है। हाथी के कुम्भस्थल पर लगी हुई राख अलङ्कार बन जाती है।
६४३. समान गुणवाले समान गुण वालों के साथ प्रमोद पाते हैं।
६४४. पक्ष में होने पर भाग्य दूसरे द्वीप से भी, समुद्र के मध्य से भी, दिशाओं के अन्त भाग से भी, अभीष्ट को शीघ्र लाकर मिला ही देता है।
६४५. कहीं घुणाक्षर भी सहायता कर देता है।

६४६. स्वशरीरमपि परार्थे यः खलु दद्यामयाचितः कृपया।
राज्यस्य कृते स कथं प्राणिवधक्रौर्यमनुमन्ये।।
नागानन्द ३.१७

भर्तृहरिः

नीतिशतकम्

६४७. अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि नरं न रञ्जयति।। ३

६४८. विशेषतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्। ७

---

६४६. परोपकार के लिए अपना शरीर भी बिना माँगे हुए कृपा भाव से दे दूँगा, फिर मैं राज्य के लिए प्राणिवध की क्रूरता की अनुमति कैसे दूँगा?

---

६४७. अज्ञ की सेवा सरलता से की जा सकती है। विशेषज्ञ की सेवा तो और अधिक सरलता से हो जाती है। थोड़ा ज्ञान पाकर अपने को जो पण्डित मान बैठे हैं, उन्हें ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

६४८. विशेष रूप से सर्वज्ञों के समाज में मूर्खों का मौन रहना ही शोभा की वस्तु है।

६४९. यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित् किंचित् बुधजनसकाशादवगतम्,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥ ८

६५०. नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्। ९

६५१. विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः। १०

६५२. सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितम्,
मूर्खस्य नास्त्यौषधम्। ११

६५३. साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। १२

६५४. येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥ १३

---

६४९. जब मैं थोड़ा-थोड़ा जानने लगा तो मतवाले हाथी की भाँति हो गया। तब तो 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस भाव से मेरा मन अभिमान से परिपूर हो गया। फिर जब मैंने विद्वानों के साथ से कुछ जान लिया तो 'मैं मूर्ख हूँ' यह समझ कर मेरा मद ज्वर की भाँति दूर हो गया।

६५०. क्षुद्र प्राणी अपनी ग्रहण की हुई वस्तुओं की तुच्छता को नहीं समझ पाता।

६५१. विवेक से रहित लोगों का सैकड़ों दिशाओं में पतन होता है।

६५२. शास्त्रों में सब की दवा है, मूर्खों की नहीं।

६५३. साहित्य, संगीत और कला से विहीन पुरुष साक्षात् पूँछकटा पशु है।

६५४. जिनके विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुग, धर्म आदि नहीं हैं, वे मृत्युलोक में पृथ्वी का भार बने हुए मनुष्य रूप से मृग ही विचरण कर रहे हैं।

६५५. वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।। १८

६५६. विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः। २०

६५७. किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि।
सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।। २१

६५८. जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।। २४

६५९. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः;
प्रारभ्य तूत्तमजना न परित्यजन्ति।। २७

---

६५५. केवल संस्कृत वाणी ही पुरुष का अलंकरण करती है। अन्य भूषग नित्य ही क्षीण होते हैं। वाणी का भूषण ही भूषण है।

६५६. विद्या पुरुष के लिए श्रेष्ठ रूप, प्रच्छन्न गुप्त धन, भोगकरी, यशःकरी, सुखकरी और गुरुओं का भी गुरु है। विदेश जाने पर विद्या बन्धुजन है, वह श्रेष्ठ देवता है। राजाओं में विद्या की पूजा होती है धन की नहीं। विद्याहीन पशु है।

६५७. यदि श्रेष्ठ विद्या हो तो धन से क्या? यदि अच्छा काव्य हो तो राज्य से क्या?

६५८. वे सुकृती कवीश्वर, जिन्हें रस सिद्ध है, सर्वोच्च हैं, उनके यशःशरीर में जरा और मृत्यु का भय नहीं है।

६५९. नीच विघ्नभय से काम हाथ में लेते ही नहीं। मध्यम कोटि के लोग काम हाथ में लेकर बाधा पड़ने पर छोड़ देते हैं। वारंवार भी विघ्नों से विचलित किये जाने पर भी उत्तम लोग काम छोड़ते नहीं।

६६०. दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ ४३
६६१. तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः। ४४
६६२. नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः। ४६
६६३. दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ ५३
६६४. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः। ५८
६६५. विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३
६६६. प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुतगते संभ्रमविधिः।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं नाप्युपकृतिः।
अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसाराः परकथाः;
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥ ६४

---

६६०. दान, भोग और नाश—ये तीन गतियाँ धन की होती हैं। जो न देता है और न भोगता है, उसकी तीसरी गति होती है।
६६१. याचकों के बीच में दान दे देने के कारण क्षीण विभववाले लोग [अपनी कृशता से ही शोभा पाते हैं।
६६२. कल्पलता की भाँति पृथिवी नाना फलों को देने वाली है।
६६३. विद्या से अलंकृत होने पर भी दुर्जन त्याज्य है। मणि से भूषित सर्प क्या भयंकर नहीं होता?
६६४. सेवा धर्म परम गहन है और योगियों की बुद्धि से भी परे है।
६६५. विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा, सभा में कौशलपूर्ण वाणी, युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि और श्रुति में व्यसन—ये महात्माओं को स्वभावतः सिद्ध होते हैं।
६६६. दान को गुप्त रखना, (अतिथि के) घर आने पर आदर करना, प्रिय करके भी चुप रहना, सभा में उपाकार का वर्णन न करना, [धन में गर्व न होना, परचर्चा में निन्दा को स्थान न देना—ये सज्जनों के विषम व्रत किसने बताये? यह तो असिधारा व्रत है।

६६७. करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलम्,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्॥ ६५

६६८. संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥ ६६

६६९. भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः
नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ ७१

६७०. विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन। ७२

---

६६७. हाथ से श्रेष्ठ त्याग, शिर से गुरु चरणों में प्रणाम, मुख में सत्य वाणी, विजयी भुजाओं में अतुल बल, हृदय में स्वच्छ वृत्ति, ईश्वर प्रणिधान में तत्पर करा देनेवाला शास्त्राध्ययन—ये सब ऐश्वर्य बिना ही स्वभावतः महापुरुषों के मण्डन हैं।

६६८. समृद्धि में महापुरुषों का चित्त कमल की भाँति कोमल होता है। विपत्तियों में महाशैल के शिला-समूह की भाँति कर्कश हो जाता है।

६६९. फल आने पर वृक्ष नम्र हो जाते हैं। नये जल से बादल भूमि पर लटक आत हैं। सत्पुरुष समृद्धि से विनयी बन जाते हैं। यही परोपकारियों का स्वभाव है।

६७०. करुणा परायण लोगों का शरीर परोपकार से शोभा पाता है, चन्दन से नहीं।

६७१. एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥ ७५

६७२. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यम्,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥ ७९

६७३. न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः। ८१

६७४. मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्। ८२

✓ ६७५. शीलं परं भूषणम्। ८३

६७६. आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कुर्वाणो नावसीदति॥ ८६

---

६७१. कुछ तो सत्पुरुष होते हैं, जो अपना काम छोड़कर दूसरों का काम करते हैं। सामान्य लोग अपने स्वार्थ की रक्षा करते हुए परोपकार करते रहते हैं। वे तो मनुष्यों में राक्षस हैं, जो स्वार्थ के लिए दूसरों का काम बिगाड़ देते हैं। जो व्यर्थ ही दूसरों का काम बिगाड़ा करते हैं, वे क्या हैं—हम नहीं जानते।

६७२. जिनके मन, वचन और शरीर में पुण्य का अमृत भरा है, जो उपकार की परम्परा से तीनों लोकों को प्रसन्न करते हैं, जो दूसरों के अल्प गुण को भी पर्वत के समान बड़ा बनाकर अपने हृदय में विकसाते हैं—ऐसे सन्त कितने हैं ?

६७३. निश्चित किये हुए काम से धीर कभी रुकते नहीं।

६७४. मनस्वी काम करनेवाले सुख-दुःख नहीं गिनते।

६७५. शील श्रेष्ठ भूषण है।

६७६. मनुष्य के लिए आलस्य शरीर में रहनेवाला महान् रिपु है। उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं। उद्यमी दुःख नहीं पाता।

६७७. प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः। ९०

६७८. नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम्,
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु संचितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।। ९६

६७९. प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः।
भर्तृ० नी० १००

वैराग्यशतकम्

६८०. निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः,
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः।
शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने,
अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः।। ९

---

६७७. जहाँ अभागे पहुँचते हैं, प्रायः वहीं विपत्तियाँ भी पहुँचती हैं।

६७८. आकृति, कुल, शील, विद्या, यत्नपूर्वक की हुई सेवा—ये कोई फल नहीं देते। पुरुष के पहले के तप से संचित किया भाग्य समय आने पर वैसे ही फल देते हैं जैसे वृक्ष।

६७९. इस कर्मभूमि को पाकर जो मनुष्य तप नहीं करता, वह अभागा ही है।

६८०. भोग की इच्छा मिट गई, पुरुषत्व का मान मिट गया, समवयस्क स्वर्ग में गये, जो मित्र अपने प्राण की भाँति प्रिय थे। आसन से धीरे से उठा जाता है। आँखों के आगे अन्धकार छा जाता है। अहो, फिर भी शरीर ढीठ है कि मरने की विपत्ति से घबरा जाता है।

६८१. भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारम्
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था,
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति।। १८

६८२. पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये,
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धयै विषयिणाम्। २७

६८३. अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः।। ३०

६८४. वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या,
सम इह परितोषे निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः।। ४९

---

६८१. भिक्षा माँग कर एक बार खाना वह भी नीरस (भोजन), शय्या पृथ्वी ही है, अपना देह ही परिजन है, फटे-चीथड़ों के सौ खण्डों की कन्था (गुदड़ी) है। हाय, ऐसा होने पर भी विषय (की तृष्णा) नहीं छोड़ती।

६८२. पहले विद्वत्ता शान्त लोगों के क्लेश को दूर करने के लिए थी। कालान्तर में वह विषयी लोगों के विषय-सुख की सिद्धि के लिए हो गई।

६८३. हम भीख माँगकर खाते हैं, दिगम्बर रहते हैं, भूतल पर सोते हैं। फिर ऐश्वर्य युक्त लोगों से क्या काम ?

६८४. यहाँ हम अपने वल्कल से संतुष्ट हैं और आप अपनी लक्ष्मी से। परितोष के क्षेत्र में समानता है। दरिद्र वह है, जिसकी तृष्णा विशाल है। मन के सन्तुष्ट होने पर कौन धनी और कौन दीन ?

६८५. यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः।
किं जातमधुना मित्र यूयं यूयं वयं वयम्।। ६३

६८६. प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघा स्ततः किम्
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किम्,
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्।।७१

६८७. सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ८६

शिशुपालवधम्

६८८. श्रेयसि केन तृप्यते। १.२९

६८९. सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि। १.७२

---

६८५. तुम हम थे और हम तुम थे—यह हमारा और तुम्हारा सोचना था। आज क्या हो गया मित्र कि तुम तुम हो और हम हम हैं?

६८६. सभी इच्छाओं को पूरी कर देने वाली सम्पत्ति मिली तो क्या? शत्रुओं के शिर पर पैर रखा तो क्या? प्रेमी लोगों का विभूतियों से सम्मान हुआ तो क्या? शरीरधारियों के शरीर से ही कल्प भर प्रतिष्ठित रहा तो क्या?

६८७. भवन में आग लगने पर कूआँ खोदने का श्रम कैसा है?

६८८. श्रेय के विषय में किसे सन्तोष होता है?

६८९. (मनुष्य की) अटल प्रकृति सती स्त्री की भाँति जन्मान्तर में भी पुरुष का अनुसरण करती है।

६९०. विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।। २.३४

६९१. पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।। २.४६

६९२. तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलङ्घनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि।। २.४८

६९३. तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते। २.५१

६९४. सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः। २.६२

६९५. अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता। २.७२

६९६. आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भा कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः।। २.७९

---

६९०. विपक्ष का विनाश किये बिना प्रतिष्ठा दुर्लभ रहती है। धूलि को पंक बनाये बिना पानी नहीं ठहरता।

६९१. अपमानित होने पर भी यदि कोई पुरुष स्वस्थ रहे तो उससे अच्छी तो वह धूल ही है जो पैर से चोट खाने पर शिर पर आक्रमण करती है।

६९२. पर्वत में ऊँचाई है, गहराई नहीं, समुद्र में गहराई है, ऊँचाई नहीं। अलंघनीयता के कारण रूप मनस्वी लोगों में ये दोनों होती हैं।

६९३. दूर होने पर भी तेजस्वी की तेजस्वियों में गणना होती है।

६९४. तेज और अन्धकार की एक-आश्रयता कहाँ सम्भव है।

६९५. गान की भाँति ही वाङ्मय अतिशय विचित्र है।

६९६. अज्ञ छोटे काम ही आरम्भ करते हैं और अत्यन्त व्यग्र हो जाते हैं। धीमान् लोग महान् कार्य हाथ में लेते हैं और व्याकुल भी नहीं होते।

६९७. अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा
नवं नवं प्रीतिरहो करोति। ३.३१

६९८. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः। ४.१७

६९९. सर्वो हि नोपगतमप्यपचीयमानम्,
र्वाधिष्णुमाश्रयमनागतमभ्युपैति ।। ५.१४

७००. आक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य।। ५.४१

७०१. परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः। ६.४५

७०२. दधति ध्रुवं क्रमश एव न तु
द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम्। ९.२९

७०३. अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम्।
९.३३

७०४. समये हि सर्वमुपकारि कृतम्। ९.४३

७०५. भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः। १०.५

---

६९७. अतिशय प्रेम के कारण अनेक बार परिचित वस्तु में भी नवता विराजमान रहती है।

६९८. रमणीयता का वही स्वरूप है कि वह प्रतिक्षण अपूर्व प्रतीत हो।

६९९. सभी लोग उपस्थित आश्रय को क्षीण होते देखकर संवर्धनशील अनुपस्थित आश्रय को अपनाते हैं ।

७००. आक्रमण करने से महान् पुरुष शत्रुओं के वश में नहीं आते।

७०१. शत्रुओं के द्वारा किया हुआ परिभव सुदुःसह होता है।

७०२. तेजस्वी लोग भी धीरे-धीरे निश्चय ही वृद्धि प्राप्त करते हैं, सहसा नहीं।

७०३. महापुरुषों का यह नित्य का व्यवहार है कि वे परस्पर उपकार करते हैं।

७०४. समय पर किया हुआ सब कुछ उपकारी होता है।

७०५. भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति को विवेक कहाँ ?

७०६. महतां हि सर्वमथवा जनातिगम्। १३.१७

७०७. महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः
सुजनो न विस्मरति जातु किंचन॥ १३.६८

७०८. को विहन्तुमलमास्थितोदये वासरश्रियमशीतिदीधितौ।
१४.८

७०९. वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्। १४.४६

७१०. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते। १५.४१

७११. स्मर्तुमधिगतगुणस्मरणः
पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः। १५.५३

७१२. सुकुमारमहो लघीयसां हृदयं तद्गतमप्रियं यतः।
सहसैव समुद्गिरन्त्यमी जरयन्त्येव हि तन्मनीषिणः। १६.२१

---

७०६. महापुरुषों का सब कुछ अलौकिक ही होता है।

७०७. अतिशय श्री को पाकर भी गर्वरहित सज्जन किसी को थोड़ा भी नहीं भूलता।

७०८. सूर्य के निकल आने पर दिन की शोभा को कौन क्षति पहुँचा सकता है।

७०९. ऊँचाई पर पहुँचे हुए जल बरसाने वाला बादल के लिए ऊषर को छोड़ना क्या उचित है?

७१०. लोग अपने स्वामी के मन के अनुसार आचरण करते हैं।

७११. परिचित गुणों को स्मरण रखनेवाले उत्तम लोग सारे अपकारों को स्मरण रखने में कुशल नहीं होते।

७१२. अहो! छोटे लोगों का हृदय सकुमारहोता है क्योंकि वे हृदय में आये हुए अप्रिय को सहसा बक डालते हैं और उसे ही मनीषी लोग पेट में पचा डालते हैं।

७१३. उपकारपरः स्वभावतः सततं सर्वजनस्य सज्जनः।
असतामनिशं तथाप्यहो गुरुहृद्रोगकरी तदुन्नतिः॥ १६.२२

७१४. परितप्यत एव नोत्तमः परितप्तोप्यपरः सुसंवृतिः।
परवृद्धिभिराहितव्यथः स्फुटनिर्भिन्नदुराशयोऽधमः॥ १६.२३

७१५. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी। १६.२५

७१६. सहजान्धदृशः स्वदुर्नये परदोषेक्षणदिव्यचक्षुषः।
स्वगुणोच्चगिरो मुनिव्रताः परवर्णग्रहणेष्वसाधवः॥ १६.२९

७१७. प्रकटान्यपि नैपुणं महत्परवाच्यानि चिराय गोपितुम्।
विवरीतुमथात्मनो गुणान् भृशमाकौशलमार्यचेतसाम्॥ १६.३०

---

७१३. सज्जन स्वभावतः सतत सर्वसाधारण का उपकार करने में लगे रहते हैं। फिर भी उनकी उन्नति दुर्जनों के हृदय में भारी रोग पैदा करती है।

७१४. उत्तम व्यक्ति दूसरे की उन्नति से दुःखी नहीं होता (अपितु प्रसन्न होता है।) मध्यम कोटि का पुरुष दुःखी होने पर भी दुःख का प्रकाशन नहीं करता। नीच लोग दूसरे की उन्नति से व्यथा पाते हैं और अपने दुराशय को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं।

७१५. सिंह बादल की गड़गड़ाहाट के प्रति गर्जन करता है, गीदड़ के बोलने पर नहीं।

७१६. बुरे लोग अपने दोष के सम्बन्ध में जन्मान्ध से होते हैं और दूसरे का दोष देखने में दिव्य नेत्र वाले होते हैं। वे अपने गुण का वर्णन करने में गला फाड़-फाड़कर बोलते हैं और दूसरे की स्तुति के समय मौनव्रत धारण कर लेते हैं।

७१७. उदात्त चित्त वाले लोगों को दूसरों के प्रकट हुए दोषों को भी चिरकाल तक छिपाने की निपुणता होती है और अपने गुण को प्रकट करने में उन्हें अतिशय अनिपुणता होती है।

७१८. वदिता न लघीयसोऽपरः स्वगुणं तेन वदन्त्यसौ स्वयम्। १६.३१
७१९. महतस्तरसा विलंघयन्निजदोषेण कुधीर्विनश्यति।
कुरुतेनखलु स्वयेच्छया शलभानिन्धनमिद्धदीधितिः॥ १६.३५
७२०. उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः। १६.४१
७२१. अथवाभिनिविष्टबुद्धिषु व्रजति व्यर्थकतां सुभाषितम्। १६.४३
७२२. योग्येनार्थः कस्य न स्याज्जनेन। १८.६६

उत्तररामचरितम्

७२३. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता। १.५
७२४. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥ १.१०

---

७१८. दूसरा कोई छोटे लोगों के गुण का वर्णन करने वाला नहीं मिलता। अतएव वे स्वयं ही उनका प्रकाशन करते हैं।
७१९. दुष्ट बुद्धि वाले लोग अपने दोष से महापुरुषों का अतिक्रमण करते हुए नष्ट होते हैं। आग स्वेच्छा से शलभों को इन्धन नहीं बनाती।
७२०. अपने विनाश की ओर जाने वाले शत्रु को भी सज्जन उसे (बचाने के लिए) उपदेश देते हैं।
७२१. दुराग्रह से ग्रस्त चित्त वालों के लिए सुभाषित व्यर्थ हो जाते हैं।
७२२. योग्य व्यक्ति से किसका काम नहीं पूरा होता?
७२३. अपने कर्तव्य का समुचित विधि से पालन करना चाहिए। दोषारोपण से छुटकारा कहाँ?
७२४. लौकिक साधुओं की वाणी अर्थ का अनुवर्तन करती है अर्थात् वे सत्य बोलते हैं। आदि ऋषियों की वाणी का अनुवर्तन अर्थ करता है। अर्थात वे जैसा कह देते हैं, वैसा होकर रहता है।

७२५. नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि। १.१४

७२६. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितम्
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥ १.३९

७२७. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति। १.२

७२८. प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसम्
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते॥ २.२

---

७२५. सुगन्धित पुष्पों का स्वाभाविक स्थान शिर है, पैर से रौंदा जाना नहीं।

७२६. उस सौभाग्यशाली का कल्याण है। वह अद्वितीय स्थिति कठिनाई से ही प्राप्त होती है, जिसमें सुख और दुःख में अन्तर न रह जाय, जो सभी परिस्थितियों में अनुकूल हो, जिसमें हृदय को विश्राम मिलता है, जिसका आनन्द वृद्धावस्था के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता और जो प्रगाढ़ प्रेम-रूप में परिणत होता है, जब काल की गति से आवरण दूर हट जाता है।

७२७. सज्जनों का सज्जनों से मिलना किसी-किसी प्रकार पुण्य से ही होता है।

७२८. व्यवहार सर्वप्रिय होता है, वाणी में जो संयम होता है वह विनय के कारण मधुर है, स्वभावतः बुद्धि कल्याणपरा होती है परिचय में कोई खटका नहीं, पहले या पीछे सतत समरस रहता है—यह महात्माओं का सर्वथा निष्कपट और विशुद्ध रहस्य है। इसका सर्वत्र सम्मान हो।

७२९. प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः। २.४

७३०. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥ २.७

७३१. उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। ३

७३२. प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य। ३

७३३. अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते॥ ३.१७

७३४. लोको न मृष्यति। ३

७३५. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। ४.११

७३६. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति॥ ५.१०

---

७२९. शुद्ध मणि प्रतिच्छाया ग्रहण करने में समर्थ होता है, मिट्टी आदि नहीं।

७३०. लोकोत्तर पुरुषों की चित्तवृत्तियों को कौन जान सकता है— वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल।

७३१. स्नेह होने पर सहानुभूति होती ही है।

७३२. सन्तान स्नेह की सर्वोच्च सीमा है।

७३३. स्नेह का आश्रय होने के कारण दम्पती के अन्तःकरण तत्त्व की अद्वितीय आनन्द ग्रन्थि (गाँठ) सन्तान रूप में बाँधी जाती है।

७३४. समाज क्षमा नहीं करता।

७३५. गुणियों के लिए गुण ही आदर का कारण है, स्त्री या पुरुष होना, बाल या वृद्ध होना नहीं।

७३६. जिस स्नेह का कोई कारण नहीं, उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं। वह ऐसा स्नेहात्मक सूत्र है, जो प्राणियों को भीतर ही भीतर सीकर मिला देता है।

७३७. वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते। ५.१९

७३८. लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः। ५.२०

७३९. कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः॥ ५.३०

७४०. सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानाम्
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्॥ ५.३२

७४१. अकिञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यदुंःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥ ६.५

---

७३७. वीरों की चर्या दारुणरसपूर्ण होती है, वह स्नेह की परिपाटी का विचार नहीं रखती।

७३८. लता पहले से ही कट गई तो उससे फूल और फल की उत्पत्ति कहाँ से होगी ?

७३९. जो कामना पूरी करती है, दरिद्रता को दूर करती है, यशस्वी बनाती है पाप को नष्ट करती है, उसी मङ्गलों की सुप्रसिद्ध जननी सूनृत वाणी को धीर लोग कामधेनु मानते हैं।

७४०. यह प्रसिद्ध है कि ब्राह्मणों का बल वाणी में होता है। जो बाहुबल है, वह क्षत्रियों का है।

७४१. बिना कुछ किये ही सुखों के संचार से दुःखों को दूर कर देता है—ऐसा प्रभाव प्रिय जन का होता है। प्रिय जन दुःखी के लिए कोई अलौकिक ही वस्तु है।

७४२. न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति।। ६.४

बोधिचर्यावतारः

७४३. क्षणसम्पदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः।। १.४
७४४. प्रियाप्रियनिमित्तेन पापं कृतमनेकधा।
सर्वमुत्सृज्य गन्तव्यमिति न ज्ञातमीदृशम्।। २.३५
७४५. अप्रिया न भविष्यन्ति प्रियो मे न भविष्यति।
अहं च न भविष्यामि सर्वं च न भविष्यति।। २.३६

---

७४२. तेजस्वी दूसरे के बढ़े हुए तेज को नहीं सह पाता। यह उसका स्वभाव है, जो प्रकृति से नियत होने के कारण बनावटी नहीं है। यदि सूर्यदेव अपनी किरणों से निरन्तर प्रज्वलित होते हैं तो यों कर आग्नेय म ेण आक्रान्त की भाँति तेज का वमन करती है?

७४३. पुरुषार्थ साधन कराने वाली और सुदुर्लभ यह क्षण-सम्पत्ति मिली है। यदि यहाँ हित की चिन्ता न की गई तो यह संयोग फिर कहाँ?

७४४. प्रिय और अप्रिय के निमित्त से अनेक बार पाप किया। सबको छोड़कर जाना है—ऐसा नहीं ज्ञात था।

७४५. अप्रिय भी नहीं रहेंगे, प्रिय भी नहीं रहेंगे। मैं भी नहीं रहूँगा। सब कुछ नहीं रहेगा।

७४६. एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मयासादितं शुभम्।
तेन स्यां सर्वसत्त्वानां सर्वदुःखप्रशान्तिकृत्॥

७४७. सर्वत्यागश्च निर्वाणं निर्वाणार्थि च मे मनः।
त्यक्तव्यं चेन्मया सर्वं वरं सत्त्वेषु दीयताम्॥ ३.११

७४८. शिक्षां रक्षितुकामेन चित्तं रक्ष्यं प्रयत्नतः।
न शिक्षा रक्षितुं शक्या चलं चित्तमरक्षता॥ ५.१

७४९. भूमिं छादयितुं सर्वां कुतश्चर्म भविष्यति।
उपानच्चर्ममात्रेण छन्ना भवति मेदिनी॥ १.३५

७५०. मृन्मर्दनतृणोच्छेदरेखाद्यफलमागतम्
स्मृत्वा ताथागतीं शिक्षां भीतस्तत्क्षणमुत्सृजेत्॥ ५.४६

---

७४६. मैंने जो सब शुभ काम किया है, उसके फलस्वरूप सभी प्राणियों के सभी दुःख मिट जायें।

७४७. सर्वस्व का त्याग मोक्ष है। मेरा मन मोक्ष चाहता है। यदि मुझे सब कुछ छोड़ ही देना है तो अच्छा हो कि उसे प्राणियों को दे दिया जाय।

७४८. शिक्षा-पालन की इच्छा रखने वाले के द्वारा चित्त की रक्षा प्रयत्न से करनी चाहिए। चंचल चित्त की रक्षा शिक्षा की रक्षा के बिना नहीं सम्भव है।

७४९. सारी पृथ्वी को आच्छादित करने के लिए कहाँ से चर्म होगा? जूते के चर्ममात्र से सारी पृथ्वी ढक जाती है।

७५०. मिट्टी मसलना, तिनका तोड़ना, रेखायें खींचना आदि व्यर्थ के कामों को बुद्ध की शिक्षा का स्मरण रखते हुए डर कर उसी क्षण छोड़ दे।

७५१. एवं वशीकृतस्वात्मा नित्यं स्मितमुखो भवेत्।
त्यजेत् भ्रुकुटिसंकोचं पूर्वाभाषी जगत्सुहृत्।। ५.७१

७५२. सशब्दपातं सहसा न पीठादीन् विनिक्षिपेत्।
नास्फालयेत् कवाटं च स्यान्निःशब्दरुचिः सदा।। ५.७२

७५३. सुभाषितेषु सर्वेषु साधुकारमुदीरयेत्। ५.७५

७५४. दक्ष उत्थानसम्पन्नः स्वयंकारी सदा भवेत्।
नावकाशः प्रदातव्यः कस्यचित् सर्वकर्मसु।। ५.८२

७५५. न किंचिदस्ति तद्वस्तु यदभ्यासस्य दुष्करम्। ६.१४

७५६. दुःखेऽपि नैव चित्तस्य प्रसादं क्षोभयेद् बुधः।
संग्रामो हि सह क्लेशैर्युद्धे च सुलभा व्यथा।। ६.१९

७५७. पूर्वं निरूप्य सामग्रीमारभेत नारभेत वा।
अनारम्भो वरं नाम न त्वारभ्य निवर्तनम्।। ७.४७

---

७५१. इस प्रकार अपने को वश में करके नित्य ही प्रसन्न मुख रहे। भौंहें टेढ़ी न करे। पहले ही बोलना चाहिए। संसार का मित्र बनना चाहिए।

७५२. पीढ़े आदि को सहसा न रखे, जिससे शब्द हो। किवाड़ न पीटे। सदा चुप रहना चाहे।

७५३. सभी सुभाषितों के सम्बन्ध में साधुवाद प्रकट करे।

७५४. दक्ष, उद्योगपरायण और स्वयं काम करने वाला सदा बने। अपने सभी कर्तव्यों के पालन करने में दूसरे को अवकाश नहीं देना चाहिए।

७५५. कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो अभ्यास करने पर भी दुष्कर हो।

७५६. दुःख पड़ने पर भी चित्त की प्रसन्नता न छोड़े। क्लेशों से युद्ध छिड़ा है। युद्ध में स्वभावतः व्यथा होती है।

७५७. पहले सामग्री देखकर आरम्भ करे या न करे। आरम्भ न करना अच्छा पर आरम्भ करके छोड़ना ठीक नहीं।

वेणीसंहारम्

७५८. स्त्रीणां हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।
मधुराऽपि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥ १.२०

७५९. गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।
करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिषु॥ २.३

७६०. ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तौत्पातिकं तथा।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति॥ २.१५

७६१. अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे॥ ३.६

७६२. दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥ ३.३७

---

७५८. स्त्रियों की चित्तवृत्ति साहचर्य के कारण पति के समान हो जाती है। मीठी लता भी विष वृक्ष पर आश्रित होने पर मूर्च्छा उत्पन्न करती है।

७५९. अपकार करनेवाले के सम्बन्ध में प्रकट या अप्रकट रूप से, कम या अधिक, स्वयं की हुई या दूसरे के द्वारा की हुई हानि अतिशय प्रसन्नता उत्पन्न करती है।

७६०. ग्रहों की दशा का फल, स्वप्न, शकुन और उत्पात आदि केवल संयोग से ही फल देते हैं (सदा नहीं)। अतएव पण्डित उनसे डरते नहीं।

७६१. यदि अवश्य ही मरना है तो व्यर्थ यश को मलिन करने से क्या?

७६२. (उच्च या नीच) कुल में जन्म होना दैव के अधीन है। मेरे वश में पुरुषार्थ है।

७६३. उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना॥ ३.४३

७६४. अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा। ५.३१

७६५. अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम्।

मुद्राराक्षसम्

७६६. चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।
न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते॥ १.३

७६७. सर्वः सर्वं न जानाति।

७६८. सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिबिना विना॥ १.२४

---

७६३. धीर महापुरुषों के अनादर करने से उपेक्षित और मन्द लोग जो क्रोधपूर्वक डराये नहीं जाते, ऐसे ही डींग मारते हैं।

७६४. जो पराक्रम से कुछ नहीं कर सकता, वही वाणीमात्र से अप्रिय करता है।

७६५. लोकाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

७६६. मूर्ख की भी अच्छे खेत में पड़ी हुई खेती समुन्नत होती है। धान के बोझ बड़े होने के लिए बोने वाले के गुणों की अपेक्षा नहीं होती।

७६७. सभी सब कुछ नहीं जानते।

७६८. दूसरे को समर्पित कर देने पर अर्थलाभ निश्चित होने पर भी इस प्रकार का कठिन काम इस कलियुग में शिबि को छोड़कर [कौन करेगा? (कि अपने को विपत्ति में डाले पर शरणार्थी को न छोड़े।)

७६९. किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।
किं त्वङ्गीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते
निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेकं हि गोत्रव्रतम्॥ २.१८

७७०. स दोषः सचिवस्यैव यदसत्कुरुते नृपः।
याति यन्तुः प्रमादेन गजो व्यालत्ववाच्यताम्॥ २.३२ ✓

७७१. कुले लज्जायाञ्च स्वयशसि च माने च विमुखः
शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलाभाद् धनवति।
तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो न विमृशति॥

---

७६९. क्या शेषनाग को शरीर में (पृथ्वी के) भार से व्यथा नहीं होती कि वह उसे दूर नहीं फेंक देता ? क्या सूर्य को परिश्रम नहीं होता कि वह कभी आराम नहीं कर लेता ? किन्तु स्वीकार किये हुए काम को नीचों की भाँति छोड़ते हुए श्रेष्ठ लजाते हैं। आये हुए उत्तरदायित्यों का निर्वाह करना सज्जनों का कुलव्रत है।

७७०. यह मन्त्री का ही दोष है कि राजा अनुचित काम करता है। महावत की असावधानी से हाथी तोड़-फोड़ करता है।

७७१. क्षणिक लाभ के लिए किसी धनी के हाथ अपने शरीर को बेंच देने पर परतन्त्र पुरुष अपने कुल, लज्जा, यश और मान से विमुख होकर उस (धनी) की आज्ञा के अनुसार हित और अहित के विचार की सीमा का उल्लंघन कर देता है—वह कुछ भी विचार नहीं कर सकता।

७७२. मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।
नीतिर्नयत्यस्मृतपूर्ववृत्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः ॥
५.८

७७३. मुक्त्वाऽऽमिषाणि मरणभयेन तृणैर्जीवन्तम्
व्याधानां मुग्धहरिणं हन्तुं को नाम निर्बन्धः ॥ ७.३

विवेकचूडामणिः

७७४. आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थितिः।
मुक्तिर्नो शतकोटिजन्मसु कृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते ॥ २

७७५. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः ॥ २०

७७६. अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः ।
न स्नानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा ॥ १३

---

७७२. स्वार्थ के वशीभूत होने पर राजनीति मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र बना देती है। वह जीवन काल में ही पुरुष का मानो जन्मान्तर प्रस्तुत कर देती है, जिसमें वह पहले की घटनाओं को भूल ही जाता है।

७७३. मांस-भोजन छोड़कर मरने के भय से केवल तृणों से ही जीवन-यापन करते हुए मोह लेने वाले हरिणों को मारने के प्रति व्याध का दुराग्रह विचित्र ही है।

७७४. आत्मा और अनात्मा का विवेक, अच्छा अनुभव, ब्रह्मात्मभाव से स्थिति और मुक्ति करोड़ों जन्मों के किये हुए पुण्यों के बिना सम्भव नहीं।

७७५. ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है—इस प्रकार का निश्चय नित्यानित्य-वस्तुविवेक कहा गया है।

७७६. कल्याणप्रद उक्तियों के माध्यम से विचार करने पर अर्थ का ज्ञान होता है—स्नान, दान और सैकड़ों प्राणायाम से नहीं।

७७७. अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर-
श्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम् ।
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश-
प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल ।। ४०

७७८. अविद्याकामकर्मादिपाशबन्धं विमोचितुम् ।
कः शक्नुयाद्विनात्मानं कल्पकोटिशतैरपि ।। ५७

७७९. शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् ।
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञात्तत्त्वमात्मनः ।। ६२

७८०. आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान् विषयो न स्वतः प्रियः ।
स्वत एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो यतः ।। १०८

७८१. मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु ।
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः ।। १७८

---

७७७. महात्माओं का यह स्वभाव है कि वे स्वतः ही दूसरे के श्रम को दूर करने में प्रवृत्त होते हैं। सूर्य की प्रखर किरणों से जलाई हुई पृथिवी को चन्द्र शीतल करता है।

७७८. अविद्या, कामना और कर्म आदि के पाशबन्धन से छुड़ाने के लिए अपने को छोड़ कर दूसरा कौन सौ करोड़ कल्पों में भी समर्थ है ?

७७९. शब्दजाल महावन है, जो चित्त को भटकाता रहता है। अतः प्रयत्न पूर्वक आत्मा के तत्त्व को तत्त्वज्ञों से सीख ले ।

७८०. विषय आत्मा के उपयोग के लिए होने से प्रिय है, अपने आप प्रिय नहीं है। स्वतः तो सबके लिए आत्मा ही प्रियतम है।

७८१. विषयों की वनस्थली में मन नामक महाव्याघ्र विचरण करता है कि मोक्ष चाहनेवाले साधु निकट न फटकें ।

७८२. अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं विशुद्धविज्ञानघनं निरंजनम्।
प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं निरन्तरानन्दरसस्वरूपम्॥ २३९

७८३. ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि। २५५

७८४. सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरं ध्यायन्भ्रमरत्वाय कल्पते॥ ३५९

७८५. श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि।
निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम्॥ ३६५

७८६. स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः।
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किञ्चन॥ ३८९

७८७. यत्नेन पुंस्त्वं सफलीकुरुष्व। ४१२

---

७८२. ब्रह्म पर, सत्, अद्वितीय, विशुद्ध, विज्ञान-घन, निरंजन, प्रशान्त, आदि और अन्त से रहित, क्रिया रहित और पूर्णरूप से आनन्द-रसमय है।

७८३. तुम वही ब्रह्म हो—अपने में यही भाव रखो।

७८४. एक निष्ठा से सत्स्वरूप ब्रह्म में स्थित रहने से मनुष्य स्वयं ब्रह्म बन जाता है, जैसे कीड़ा भौंरे का ध्यान करते-करते स्वयं भौंरा बन जाता है।

७८५. श्रवण से मनन सौ गुना जानें, मनन से निदिध्यासन (आत्म-भावना की प्रतिष्ठा) लाख गुना है और उससे अनन्त गुना निर्विकल्पक समाधि है।

७८६. अपने से भिन्न कुछ भी तो नहीं है—(मनुष्य) स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव और अखिल विश्व है।

७८७. यत्न से अपने पुरुषत्व को सफल बनाओ।

काव्यमीमांसा

७८८. विद्यास्थानानां गन्तुमन्तो न शक्तः
जीवेद्वर्षाणां योऽपि साग्रं सहस्रम्॥

७८९. पुत्रात्पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म।

७९०. यस्य निसर्गतः शास्त्रमनुधावति बुद्धिः स बुद्धिमान्।

७९१. सन्ति पुस्तकविन्यस्ता काव्यबन्धा गृहे गृहे।
द्वित्रास्तु भावकमनःशिलापट्टनिकुट्टिताः॥

७९२. गुणादानपरः कश्चिद्दोषादानपरोऽपरः।
गुणदोषाहृतित्यागपरः कश्चनभावकः॥

७९३. द्वन्द्वोऽस्मि द्विगुरस्मि च गृहे च मे सततमव्ययीभावः।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः॥

---

७८८. सहस्रों वर्षों से अधिक भी जीये तो भी विद्याओं का अन्त नहीं पा सकता।

७८९. पुत्र से पराजित होना दूसरा पुत्र जन्म ही है।

७९०. वह बुद्धिमान् है, जिसकी बुद्धि स्वभावतः शास्त्रीय विषयों का अधिगमन करती है।

७९१. पुस्तकों के रूप में घर-घर काव्य पाये जाते हैं। आलोचकों के मानस शिलापट्ट पर उत्कीर्ण काव्य तो दो-तीन ही हैं।

७९२. कुछ आलोचक गुणग्राही होते हैं, दूसरे दोषदर्शी होते हैं। अद्वितीय ही वे आलोचक हैं, जो गुण-दोष के वर्णन से परे होते हैं।

७९३. मैं द्वन्द्व (दम्पती) हूँ, द्विगु (दो गौवों वाला) हूँ, मेरे घर पर सदैव अव्ययीभाव (व्यय करने के लिए कुछ भी नहीं) है। तत् पुरुष (इसलिए हे पुरुष) कर्मधारय (काम करो,) जिससे मैं बहुव्रीहि (अतिशय [illegible]) बन जाऊँ।

७९४. अस्तु वस्तुषु मा वा भूत्कविवाचि रसः स्थितः।

७९५. वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्रो गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये।
स्तुवन्निबध्नात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दंस्तु दोषाकरमाह धूर्तः॥

७९६. जनापवादमात्रेण न जुगुप्सेत चात्मनि।
जानीयात् स्वयमात्मानं यतो लोको निरंकुशः॥

७९७. प्रत्यक्षकविकाव्यं च रूपं च कुलयोषितः।
गृहवैद्यस्य विद्या च कस्मैचिद्यदिरोचते॥

७९८. न च स्वकृतिं बहुमन्येत। पक्षपातो हि गुणदोषौ विपर्यासयति॥

७९९. त्यागाधिकाः स्वर्गमुपाश्रयन्ते
त्यागेन हीना नरकं व्रजन्ति।
न त्यागिनां किञ्चिदसाध्यमस्ति
त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति।

---

७९४. किसी वस्तु में रस हो या न हो, कवि की वाणी में रस होता ही है।

७९५. गुण और दोष की उक्ति के वश होने के कारण काव्य में वस्तु का स्वाभाव अनियमित है। चन्द्रमा की स्तुति करता हुआ कवि उसे अमृतांशु कहता है तो निन्दा करता हुआ धूर्त (कवि) उसे दोषाकर कहता है।

७९६. जनापवाद मात्र से अपनी आत्मा का तिरस्कार उचित नहीं है। स्वयं ही अपने को जानना चाहिए क्योंकि लोक निरङ्कुश है।

७९७. प्रत्यक्ष कवि की कविता, कुल स्त्री का स्वरूप, घर के वैद्य की विद्या कदाचित् ही किसी को अच्छी लगती हो।

७९८. अपनी रचना को बहुत ऊँचा न समझे। पक्षपात गुण को दोष और दोष को गुण में बदल देता है।

७९९. अधिक त्याग वाले स्वर्ग में और त्यागहीन नरक में स्थान पाते हैं। त्यागी के लिए कुछ भी असाध्य नहीं। त्याग सभी विपत्तियों को दूर कर देता है।

८००. मतिदर्पणे कवीनां विश्वं प्रतिफलति।

८०१. यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः।
निजवपुषैव परेषां तथापि सन्तापमपहरति॥

८०२. मासि मासि समा ज्योत्स्ना पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।
तत्रैकः शुक्लतां यातो यशः पुण्यैरवाप्यते॥

८०३. शेतां हरिर्भवतु रत्नमनन्तमन्त-
र्लक्ष्मीप्रसूतिरिति नो विविदामहे हे।
हा दूरदूरसपयास्तृषितस्य जन्तोः
किंत्वत्र कूपपयसः स मरोर्जघन्यः॥

८०४. हलमगु बलस्यैकोऽनडवान्हरस्य न लाङ्गलम्।
क्रमपरिमिता भूर्विष्णोर्न गोर्न च लाङ्गलम्।
प्रवहति कृषिर्नाद्याप्येषां द्वितीयगवं विना
जगति सकले नेदृग्दृष्टं दरिद्रकुटुम्बकम्॥

---

८००. कवियों के मतिदर्पण पर सारे विश्व का प्रतिबिम्ब पड़ता है।

८०१. यद्यपि दैव ने चन्दन वृक्ष को फल और कुसुम से रहित बनाया है, फिर भी वह अपने शरीर से ही दूसरों का सन्ताप दूर करता है।

८०२. प्रत्येक मास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष में बराबर चाँदनी रहती है। उन दोनों में से केवल एक शुक्ल कहा जाता है। यश पुण्यों से ही मिल पाता है।

८०३. समुद्र में विष्णु भगवान् भले सोते हों, वह समुद्र अनन्त रत्नों का और लक्ष्मी का भी जन्मदाता रहा करे—यह विवादास्पद नहीं है। पर किसी प्यासे व्यक्ति के लिए अत्यन्त दूर नीरस जल रखने वाला यह समुद्र तो मरुभूमि के कुएँ से भी हीन ठहरा।

८०४. बलराम के पास हल है पर बैल नहीं। शिव के पास एक बैल तो है पर हल नहीं। विष्णु के पास एक पद नापी हुई भूमि है, पर हल-बैल नहीं है। यदि ये तीनों सामूहिक खेती करना चाहें तो भी एक और बैल के बिना आज भी (सफलता) सम्भव नहीं है। सारे संसार में ऐसा दरिद्र कुटुम्ब नहीं देखा गया।

कथासरित्सागरः

८०५. अशीलं कस्य भूतये। १.४.८४

८०६. न स्वेच्छं व्यवहर्तव्यमात्मनः भूतिमिच्छता। १.४.१२७

८०७. प्रभूणां हि विभूत्यन्धा धावत्यविषये मतिः। ३.३.१३९

८०८. यो यद्वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम्। ३.३.१४८

८०९. आमुखायतिकल्याणं कार्यसिद्धिं हि शंसति। ३.४.४९

८१०. सम्पत्सु हि सुसत्त्वानामेकहेतुः स्वपौरुषम्। ३.४.६५

८११. अल्पभावेषु धीराणामवज्ञैव हि शोभते। ३.४.१३२

८१२. किमदेयमुदाराणामुपकारिषु तुष्यताम्। ३.४.२०३

८१३. दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम्। ३.४.३११

८१४. निसर्गः स हि धीराणां यदापद्यधिकदृढाः। ३.६.३१

८१५. विषयाकृष्यमाणा हि तिष्ठन्ति सुपथे कथम्। ३.६.१९२

---

८०५. शीलहीनता किसकी उन्नति के लिए है?

८०६. अपनी उन्नति चाहनेवाले को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए।

८०७. वैभव से अन्धे स्वामियों की बुद्धि बुरे विषयों की ओर जाती है।

८०८. जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा ही फल पाता है।

८०९. आरम्भ में कल्याण का आना कार्य में सफलता की सूचना है।

८१०. सात्त्विक लोगों की सम्पत्ति का अद्वितीय साधन है आत्मपौरुष।

८११. छोटे लोगों के प्रति महापुरुषों की अवज्ञा ही शोभा देती है।

८१२. सन्तुष्ट होने पर उदार पुरुषों के लिए उपकारियों को कुछ भी अदेय नहीं।

८१३. सत्त्वशाली लोगों की सहायता एकमात्र दैव करता है।

८१४. यह धीरों का स्वभाव है कि आपत्ति में अधिक दृढ़ हो जाते हैं।

८१५. विषयों की ओर आकृष्ट लोग सुपथ पर कैसे रहेंगे?

८१६. कन्दुको भित्तिनिक्षिप्त इव प्रतिफलन्मुहुः
आपतत्यात्मनि प्रायो दोषोऽन्यस्य चिकीर्षितः॥ ३.६.२१३

८१७. न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्तामणेः क्षतिः। ४.२.२१६

८१८. कासां हि नापदां हेतुरतिलोभान्धबुद्धिता। ५.१.२०

८१९. प्रवादमोहितः प्रायो न विचारक्षमो जनः। ५.१.२१९

८२०. निसर्गो ह्येष महतां यदापन्नानुकम्पनम्। ५.२.११६

८२१. प्राप्यते किं यशः शुभ्रमनङ्गीकृत्य साहसम्। ५.२.२२५

८२२. असिद्धार्था निवर्तन्ते न हि धीराः कृतोद्यमाः। ५.३.१४

८२३. वार्यमाणस्य वाञ्छा हि विषयेष्वभिवर्धते। ६.५.९१

८२४. देहपातमपीच्छन्ति सन्तो नाविनयं पुनः। ८.६.९६

---

८१६. जिस प्रकार दीवाल पर फेंकी हुई गेंद अपने ऊपर आ गिरती है। उसी प्रकार दूसरे के लिए चाही हुई हानि अपने ऊपर आ पड़ती है।

८१७. काच के लिए मुक्तामणि की हानि अनुचित है।

८१८. अत्यन्त लोभ से बुद्धि का अन्धा हो जाना किन विपत्तियों का कारण नहीं है।

८१९. प्रवाद से मोहित होने पर मनुष्य की विचार-शक्ति मारी जाती है।

८२०. यह महापुरुषों का स्वभाव है कि वे आपत्ति में पड़े लोगों से सहानुभूति रखते हैं।

८२१. साहसी बने बिना शुभ्र यश क्या प्राप्य है?

८२२. उद्यमी धीर काम पूरा किए बिना नहीं लौटते।

८२३. विषयों के प्रति रोके हुए पुरुष की इच्छा बढ़ती है।

८२४. सज्जन लोग मरना पसन्द करते हैं, पर अविनय नहीं।

८२५. चित्रमुच्छ्रायपाताभ्यां क्रीडतीव विधिर्नृणाम्। ९.४.९६

८२६. जीवत्यर्थदरिद्रोऽपि धीदरिद्रो न जीवति। १०.८.४२

८२७. वज्रादपि हि वीराणां चित्तरत्नमखण्डितम्। १२.८.५६

८२८. अहो समुद्रगम्भीरधीरचित्ता मनस्विनः।
कृत्वाऽप्यनन्यसामान्यमुल्लेखं नोद्गिरन्ति ये॥ १२.११.११५

८२९. करुणार्द्रा हि सर्वस्य सन्तोऽकारणबान्धवाः। १२.३४.२०

८३०. परार्थफलजन्मानो न स्युर्मार्गद्रुमा इव
तापच्छिदो महान्तश्चेज्जीर्णारण्यं जगद्भवेत्॥ १४.२२

क्षत्रचूडामणिः

८३१. सद्भिरध्युषिता धात्री सम्पूज्येति किमद्भुतम्।
कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः॥

---

८२५. आश्चर्य है कि विधि लोगों की उन्नति और अवनति से खेलता है।

८२६. धन की दृष्टि से दीन तो जीता है पर बुद्धिहीन का जीना जीना नहीं।

८२७. वीरों का चित्तरत्न वज्र से भी नहीं खण्डित होता।

८२८. अहो, मनस्वी लोगों का चित्त समुद्र की भाँति गम्भीर होता है। वे अलौकिक कार्य करके भी उसका उल्लेख नहीं करते।

८२९. सज्जन लोग करुणा से आर्द्र होते हैं, वे अकारण बन्धु होते हैं।

८३०. परोपकार के लिए ही जन्मे हुए मार्ग के वृक्षों की भाँति यदि महापुरुष दूसरों का सन्ताप नहीं दूर करते तो यह संसार जीर्ण अरण्य हो जाता।

८३१. सज्जनों के द्वारा निवास की हुई भूमि पूज्य बन जाती है तो क्या आश्चर्य ? काला लोहा रसायन के संयोग से सोना बन जाता है।

८३२. सम्पल्लाभफलं पुंसां सज्जनानां हि पोषणम्।
काकार्थफलनिम्बोऽपि श्लाघ्यते न हि चाम्रवत्॥

८३३. समदुःखसुखा एव बन्धवो ह्यत्र बान्धवाः।
दूता एव कृतान्तस्य द्वन्द्वकाले पराङ्मुखाः॥

८३४. जीवनात्तु पराधीनाज्जीवानां मरणं वरम्।
मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्वं वितीर्णं केन कानने॥

८३५. दुर्जनेऽपि हि सौजन्यं सुजनैर्यदि संगमः।

८३६. संसारोऽपि हि सारः स्याद् दम्पत्योरेककण्ठयोः।

८३७. अविवेकिजनानां हि सतां वाक्यमसङ्गतम्।

८३८. अनवद्या सती विद्या फलमूकाऽपि किं भवेत्।

८३९. सज्जनानां हि शैलीयं सकृतारम्भशालिता।

---

८३२. सज्जनों का पोषण पुरुषों की सम्पत्ति लाभ का (श्रेष्ठ) फल है। कौवे के लिए उपयोगी फल वाले नीम की प्रशंसा आम की भाँति नहीं होती।

८३३. दुःख-सुख में समान रहनेवाले बन्धु ही वास्तविक बान्धव हैं। जो विपत्ति के समय मुँह मोड़ें, वे यमदूत ही हैं।

८३४. पराधीन जीवन से तो मरना अच्छा। सिंह को वन में किसने राजा बनाया ?

८३५. सुजनों की संगति होने पर दुर्जन में भी सुजनता आ जाती है।

८३६. दम्पती के एक कण्ठ होने पर (असार) संसार भी सारपूर्ण हो जाता है।

८३७. विवेकरहित लोगों को सज्जनों की वाणी अर्थहीन लगती है।

८३८. निर्दोष विद्या क्या कभी निष्फल हो सकती है ?

८३९. अपने कार्य का [illegible] करना सज्जनों की रीति है।

८४०. विवेकभूषितानां हि भूषा दोषाय कल्पते।
८४१. प्रत्यक्षे च परोक्षे च सन्तो हि समवृत्तिकाः।

प्रबोधचन्द्रोदयम्

८४२. प्रभवति मनसि विवेको
विदुषामपि शास्त्रसम्भवस्तावत्।
निपतन्ति दृष्टिविशिखा
यावन्नेन्दीवराक्षीणाम्।। १.११
८४३. गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते।। १.१२
८४४. प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति।। ४.७
८४५. निर्दहति कुलमशेषं ज्ञातीनां वैरसम्भवः क्रोधः। ५.१

---

८४०. विवेक से सुशोभित लोगों के लिए अपने को ऊपर से सजाना दोषावह है।
८४१. सज्जन प्रत्यक्ष और परोक्ष में समान व्यवहार करते हैं?
८४२. शास्त्रों के द्वारा प्रदत्त विवेक विद्वानों के मन में तभी तक प्रभाव दिखलाता है, जब तक कमलनयनी के नेत्रवाणों का वह शिकार नहीं बनता।
८४३. अभिमान करनेवाले, कार्य और अकार्य को न जाननेवाले तथा कुपथ पर चलने वाले गुरु का भी परित्याग कर देना चाहिए।
८४४. साधारणतः अच्छे काम करने वालों के लिये देवता भी सहायता करते हैं। कुपथ पर चलनेवाले को सोदर (भाई) भी छोड़ देता है।
८४५. परिचित लोगों के वैर से उत्पन्न होने वाला क्रोध सारे कुल का नाश कर देता है।

८४६. समानान्वयजातानां परस्परविरोधिनां।
परैः प्रत्यभिभूतानां प्रसूते सङ्गतिः श्रियम्।। ५.८

राजतरंगिणी

८४७. वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः।
येनायाति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च।। १.३

८४८. तपोविभूतयोऽचिन्त्या द्विजानामुग्रतेजसाम्।। १.१६०

८४९. धन्यास्ते पृथिवीपालाः सुखं ये निशि शेरते।
पौरान् पुत्रानिव पुरः सर्वतो वीक्ष्य निर्वृतान्।। २.४२

८५०. खिन्नस्य हि विपर्येति तत्त्वज्ञस्यापि शेमुषी।। ३.२०३

८५१. महान्तो ह्यर्थिताः स्वल्पं फलन्त्यल्पेतरत्स्वयम्। ३.२७६

८५२. नाभिमानः शुभार्थिनाम्। ४.७४

---

८४६. समान वंश में उत्पन्न, परस्पर विरोधी और शत्रुओं के द्वारा दबाये हुए लोगों की संगति अभ्युदय के लिए होती है।

८४७. अमृत के प्रवाह से बढ़कर सुकवि का वह गुण वन्द्य है, जिससे अपना और दूसरे का यशःशरीर अमर हो जाता है।

८४८. अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मणों की तपोविभूति अचिन्त्य होती है।

८४९. वे राजा धन्य हैं, जो पुत्रों के समान पुरवासियों को अपने सामने पूर्ण सुखी देखकर रात में सुख से सोते हैं।

८५०. तत्वज्ञ की भी बुद्धि खिन्न होने पर ठीक नहीं काम करती।

८५१. महापुरुष थोड़ा माँगने पर स्वयं बहुत दे देते हैं।

८५२. शुभ चाहने वालों को अभिमान नहीं होता।

८५३. नादातृगृहजो लुब्धो नानीर्ष्यो नित्यदुःखितः।
नास्त्रीजितः सर्वहास्यो नावृद्धः स्निग्धभाषितः॥ ४.९१

८५४. वाग्मिनां कस्य सामर्थ्यं परिपन्थयितुं वचः॥ ४.२६१

८५५. द्वेषादिवैकृतवतः प्रतिभासतेऽन्यो
मिथ्यैव चित्रमधिको विशदात्मनोऽपि।
चन्द्रादि पश्यति पुरो द्विगुणं प्रकृत्या
तेजोमयं तिमिरदोषहतं हि चक्षुः॥ ४.३१४

८५६. अम्भोजानि घनाघनव्यवहितोऽप्युल्लाघयत्यंशुमान्
दूरस्थोऽपि पयोधरोऽतिशिशिरस्पर्शं करोत्यातपम्।
शक्तिः काप्यपरीक्षिताऽस्ति महतां स्वैरं दविष्ठान्यहो
यन्माहात्म्यवशेन यान्ति घटनां कार्याणि निर्यन्त्रणाम्॥
४.३६५

---

८५३. जो संग्रह करनेवाले घर में उत्पन्न है, वह लोभी होगा। जो नित्य दुःखी है, वही ईर्ष्यालु होगा। जो स्त्री के वश में है, वह सबके द्वारा हँसा जायेगा। वृद्ध के अतिरिक्त स्निग्ध भाषण करनेवाला नहीं होता।

८५४. जिनकी वाणी सिद्ध है, उनकी बात कौन टाल सकता है?

८५५. द्वेषादि विकारों से ग्रस्त विशदात्मा को भी कोई विशेष व्यक्ति मिथ्या ही विचित्र प्रतीत होता है। स्वभावतः तेजोमय चक्षु अन्धकार के दोष से हत होने पर एक चन्द्रमा को दो देखने लगता है।

८५६. घने बादलों से ढका हुआ भी सूर्य कमलों को खिला देता है। दूर होने पर भी बादल धूप को अत्यन्त शिशिर स्पर्शवाले बना देते हैं। महापुरुषों में कोई अज्ञात छिपी हुई शक्ति होती है, जिसकी महिमा के प्रभाव से दूर होने पर कार्य निर्बाध होकर संयोजित हो जाते हैं।

८५७. अकार्याण्यपि पर्याप्य कृत्वाऽपि वृजिनार्जनम्।
विधीयते हितं यस्य स देहः कस्य सुस्थिरः॥ ४.३८३

८५८. ह्यः पश्यद्भिरकारणस्मितसितं पाथोजकोशाकृति
श्मश्रूद्भेदकठोरमद्य रभसादुत्तप्तताम्रप्रभम्।
प्रातर्जीर्णविलक्षकेशविकृतं वृद्धाजशीर्षोपमम्
वक्त्रं निः परिहस्यते ध्रुवमिदं भूतैश्चिरस्थायुभिः॥ ३.३८६

८५९. दैवस्याम्बुमुचश्च नास्ति नियमः कोप्यानुकूल्यं प्रति
व्यञ्जन्यः प्रियमुत्कटं घटयते जन्तोः क्षणादप्रियम्।
क्षिप्रं दीर्घनिदाघवासरविपत्संतापनिर्वापणम्
प्रादुष्कृत्य वनस्पतेः प्रकुरुते विद्युद्विसर्गं च यः॥ ४.५४५

---

८५७. बुरे काम करके भी और पाप कमा कर भी जिसका हित किया जाता है, वह शरीर भी किसका स्थिर रहा?

८५८. कल तो अकारण हास्य से प्रसन्न और कमल-कोशकी आकृति वाला मुख था, आज सहसा तपाते हुए ताँबे के समान कठोर दाढी उस पर निकल पड़ी, कल सवेरे ही बूढ़े, कुरूप, केश के विकार से विकृत बूढ़े बकरे के सिर के समान उस मुख को देखते हुए स्थविर विद्वानों के द्वारा अवश्य ही हँसी नहीं रोकी जाती।

८५९. दैव और बादल का अनुकूल रहने के विषय में कोई ठिकाना नहीं रहता। दैव बहुत अधिक प्रिय दिखाते हुए प्राणी का महान् अनर्थ दूसरे ही क्षण कर देता है, इधर बादल चिरकालीन ग्रीष्म के दिनों की विपत्तिपूर्ण गर्मी को मिटाते हुए ही विजली को गिराते हुए वनस्पति को जला भी देता है।

८६०. स नास्ति कश्चित् प्रथमं यः प्रदर्श्यानुकूलताम्
सन्ताप्यते न चरमं नीचप्रीत्येव नानया ॥ ५.७

८६१. अयमवसर उपकृतये प्रकृतिचला यावदस्तिसम्पदियम्
विपदि सदाभ्युदयिन्यां पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः ॥ ५.३६

८६२. यत्संग्रहो रत्नमहौषधीनां करोति सर्वव्यसनावसानम्।
त्यागेन तद्यस्य भवेन्नमोऽस्तु चित्रप्रभावाय धनाय तस्मै ॥
६.२२७

८६३. कुलिशं सर्वलोहानामम्भसां शैलसेतवः ।
अभेद्याः प्रतिभाव्यन्ते न किंचिदसतां पुनः ॥ ६.२७३

८६४. ये बालादपि संमूढा प्राज्ञाः सुरगुरोरपि।
तेषां न विद्मः के तावन्निर्माणपरिमाणवः ॥ ६.२७४

८६५. प्रत्यासन्नविनाशानामुपदेशो निरर्थकः ॥ ७.५५

---

८६०. ऐसा पुरुष तो हुआ ही नहीं, जिसको नीच लोगों की मैत्री की भाँति पहले अनुकूलता दिखाकर पीछे (लक्ष्मी ने) जलाया न हो।

८६१. यह उपकार का अवसर है, जब तक स्वभावतः चंचल सम्पत्ति मेरे पास है। विपत्ति के सदा बढ़ते रहने पर फिर उपकार का कहाँ अवसर ?

८६२. रत्न और महौषधियों का संग्रह सभी विपत्तियों को दूर कर देता है किन्तु जिस धन का त्याग ही यह सब कर दिखाता है, उस विचित्र प्रभाववाले धन को नमस्कार।

८६३. वज्र सभी लोहों को और पानी पत्थर के बाँधों को तोड़ देने में भले असमर्थ हों, पर दुर्जनों के लिए कुछ भी दुर्भेद्य नहीं होता।

८६४. बालकों से भी बढ़कर जो अबोध हैं और बृहस्पति से भी बढ़कर बुद्धिमान् हैं, उनके विषय में नहीं जानते कि उनके निर्माण-परमाणु क्या हैं ?

८६५. जिनका विनाश निकट हो, उनको उपदेश व्यर्थ ही रहते हैं।

८६६. परायत्ततया चित्तं पशोरप्युपतप्यते। ७.७२

८६७. पापिनामपि हन्तेयं काऽपि सत्कर्मवासना। ७.१२१

८६८. भाग्याम्बुवाहतडितो निविडाः कस्य सम्पदः। ७.२०५

८६९. भाग्याधीनं धनं ध्यात्वा मुधा मुग्धधियामसौ
कुलविक्रमयोर्दर्पो मिथ्यैव पृथुतां प्रति॥ ७.२०६

८७०. भाग्यप्रभावे निःसारे सुखमेकान्ततः कुतः। ७.२२६

८७१. नाभिमानपरित्यागः कर्तुं शक्यो मुनेरपि। ७.२३८

८७२. किं नाभ्येति विपर्ययं विगलने शीलस्य चिन्तामणेः।
७.३१६

८७३. वैरस्य रूपमेतद्धि भेदं याति मुहुर्मुहुः।
सन्धीयमानमपि यत्क्लिन्नाम्बरमिवाशयम्। ७.३८४

---

८६६. पराधीनता से तो पशुओं का भी चित्त उद्विग्न हो उठता है।
८६७. पापियों को भी, आश्चर्य है, सत्कर्म की कोई वासना होती ही है।
८६८. भाग्य रूपी बादल के बिजली के समान किसकी सम्पत्ति निश्चल है?
८६९. धन को भाग्याधीन समझकर मन्दमति लोगों का कुल और विक्रम सम्बन्धी दर्प अपने ऐश्वर्य के आधार पर हो सकता है।
८७०. भाग्य का प्रभाव निःसार होने पर कहाँ से केवल सुख होगा?
८७१. मुनियों के लिए भी अभिमान का परित्याग कर देना असम्भव है।
८७२. शील रूपी चिन्तामणि के नष्ट होने पर क्या-क्या नहीं विपरीत होता?
८७३. वैर का रूप कुछ ऐसा ही होता है कि वारंवार सन्धि करने पर भी भेद उत्पन्न हो जाता है जैसे पुराना कपड़ा वारंवार सीने पर भी फटा करता है।

८७४. मिथ्योपकरणं नारीर्गणयन्ति नृणां जनाः।
परिणामे तु नारीणां क्रीडोपकरणं नराः।। ७.४२४

८७५. दानोपभोगरहिताः काले क्लेशेन भूयसा।
अन्यार्थमर्थान् रक्षन्ति चित्रं लुब्धा महाशयाः।। ७.५०१

८७६. प्राणान् धारयते निपीय मरुतः शेते तमोऽन्धे बिले
संभोगे परदत्तमिच्छति पटं नग्नस्त्रपाशान्तये।
विस्तार्येति कदर्थतामहिरवत्यन्यस्य हेतोर्निधीन्
नान्यः कोऽपि परं परोपकृतिषु प्रौढोऽस्ति लुब्धं विना।। ७.५०२

८७७. अर्था भाग्योदये जन्तुं विशन्ति शतशः स्वयम्।
दिग्भ्योऽभ्युपेत्य सर्वाभ्यः सायं तरुमिवाण्डजाः।। ७.५०४

---

८७४. लोग झूठ ही स्त्री को पुरुष की सामग्री मानते हैं। अन्त में तो पुरुष ही नारी की क्रीड़ा की सामग्री बनते हैं।

८७५. लोभी महाशय दान और उपभोग से रहित होकर अत्यन्त कष्ट सहकर भी दूसरों के लिए धन की रक्षा करते हैं--यह विचित्र ही है।

८७६. हवा पीकर प्राण धारण करता है, अन्धकाराच्छन्न बिल में सोता है। भोग होने पर भी नंगा होकर लज्जा दूर करने के लिए दूसरों से दिये कपड़े चाहता है। इस तरह अपनी कदर्थता का विस्तार करके वह दूसरों के लिए साँप की भाँति धन की रक्षा करता है। लोभी को छोड़कर और कौन परोपकार करने में बढ़ा-चढ़ा है?

८७७. सैकड़ों मार्गों से सम्पत्तियाँ भाग्योदय होने पर आने लगती हैं जैसे सन्ध्या के सभी दिशाओं से उड़कर पक्षी वृक्ष पर आ जाते हैं।

८७८. प्रभुर्वीतक्षान्तिः सुहृदतिशठः स्त्री परुषवाक्
सुतो गर्वोन्नद्धः परिजन उदात्तप्रतिवचाः।
इयान्सोढुं शक्यो ननु हृदयदारी परिकरो
न तु श्रोतावज्ञालुलितनयनान्तं परिभवन्॥ ७.६१६

८७९. धत्ते श्रियं सृजति कीर्तिमघं लुनीते
मित्रत्वमानयति हन्त विरोधिनोऽपि।
यात्यध्वभिः प्रतिपदं सुमनोनुकूलैः
गोः कामधुक् कमिव नापहरत्यनर्थम्॥ ७.७८९

८८०. निर्दोषा सदा प्रेष्या स्वाम्यादेशानुपालने। ७.७९०

८८१. द्विपद्वीपिक्रव्यादुरगतुरगादिभ्रमकृतो
यथाऽस्यां भिद्यन्ते दिवि किल त एवाम्बुदलवाः।
तथा सौम्यक्रूरक्रमविकृतिभाजस्तनुभृतां
क्षणानां नानात्वान्ननु हृदि विकारोर्मय इमाः॥ ७.७९२

---

८७८. क्षमारहित स्वामी, अतिशय शठ मित्र, परुषवाणी वाली स्त्री, गर्वोन्नत पुत्र और उत्तर देनेवाला हृदयविदारक नौकर इनको सहा जा सकता है, किन्तु उपेक्षा से चंचल नेत्रकोण वाले अनादर करते हुए श्रोता असह्य हैं।

८७९. कामधेनु की भाँति वाणी श्री प्रदान करती है, यश का सर्जन करती है, पाप को काटती है, विरोधियों को भी मित्र बना देती है, अपने मन के अनुकूल मार्ग से प्रतिपद चलती है। वह किस अनर्थ को दूर नहीं कर देती ?

८८०. स्वामी के आदेश का पालन करने में प्रेष्य (सेवक) सदा निर्दोष होते हैं।

८८१. हाथी, चीते, चील, साँप और घोड़े की भ्रान्ति कराने वाले बादल के ही टुकड़े जैसे आकाश में टूट कर बनते रहते हैं, वैसे ही शरीर धारियों के हृदय में ये विचार की लहरें कभी सौम्य और कभी क्रूर के क्रमिक विकारवाली होकर नाना क्षणों में उठती हैं।

८८२. ग्रीष्मस्योष्मा व्रजति घनतां नूनमासन्नवृष्टेः
नैशं गाढीभवति तिमिरं सन्निकृष्टप्रभातम् ।
जन्तोरेवं प्रभवविभवस्फारसम्पत्प्रचारात्
निष्क्रामन्ती विपदुपचितोपद्रवोद्रेकमेति ।। ७.७९५

८८३. यत्त्राणाय विगण्यते विधिवशात्तेनैव नाशो भवेत् ।। ७.८०४

८८४. आसन्नाभ्रजलस्य दावविगमे विद्युद्भयं शाखिनो
नक्रास्याद् गलतश्च मज्जनमयी शङ्का भवेद्वारिधौ ।
भोक्तव्यस्य विधिः शुभस्य रभसात् स्वादुत्वनिष्पत्तये
जन्तोः सन्तनुते निराकृतभियो भीत्यन्तरोत्पादनम् ।।

८८५. स्थिराः कस्य विभूतयः । ७.८३३

८८६. योग्यः कृतापकारोऽपि कदाचिदुपयुज्यते ।
विहितागारदाहोऽग्निः शरणं भोज्यसिद्धये ।। ७.८९१

---

८८२. वृष्टि के निकट होने पर ग्रीष्म की उष्मा बढ़ जाती है, प्रभात के निकट होने पर रात्रि का अन्धकार गाढ़ा हो जाता है। वैसे ही ऐश्वर्यशालिनी सम्पत्तियों के आगमन के थोड़ा पहले जानेवाली विपत्ति उपद्रवों का विकराल रूप प्राणियों के लिए प्रस्तुत कर देती है।

८८३. जिससे परित्राण की कल्पना की जाती है, उसी से विधिवशात् नाश हो जाता है।

८८४. बरसात के निकट आ जाने से दावाग्नि के मिट जाने पर बिजली का भय वृक्षों को होता है। घड़ियाल के मुँह से निकलने पर समुद्र में डूबने की शंका होती है। विधि भोगने योग्य कल्याण के स्वाद की पूर्णता के लिए प्राणी को एक भय के दूर कर लेने के पश्चात् दूसरे भय का सामना करा देता है।

८८५. किसकी विभूतियाँ स्थिर हैं ?

८८६. अपकार करनेवाला भी कभी उपयोगी होता है। घर को जला देनेवाला अग्नि भोजन पकाने के लिए उपकारक होता ही है।

८८७. यदुल्लासाय संरम्भो धीरैर्विस्तार्यते महान्।
कृत्यं हिनस्ति तद्दैवमल्पेनैव च वस्तुना ॥ ७.९१७

८८८. उन्मीलनं तिग्मरुचिः प्रयत्नाद्येषां सहस्रेण करैः करोति।
उन्मूलयत्येककरेण तानि पद्मानि धाता कुपितो द्विपेन ॥
७.९१८

८८९. कुष्ठार्ताङ्घ्रियुगः शिखी बहुपदं गृह्णाति धावन्नहिं
भानुः पादसहस्रभाक् प्रतिपदं संचार्यतेऽनूरुणा।
वंच्यन्ते बलिनोऽपि यल्लघुबलैः सामर्थ्यहीनैश्च यत्
भ्राम्यन्ते परिपूर्णवृत्तय इदं दैवस्य लीलायितम् ॥ ७.९५९

८९०. अधिगतवतां लोके विश्वाद्भुतामपि सम्पदं
न खलु विरतिर्दुष्कर्मभ्यो धनार्जनकांक्षिणाम् ।
किमपि कमलावाप्त्यै पद्माकरोद्धृतिपातकम्
भजति कमलालीलावासो भवन्नपि हि द्विपः॥

---

८८७. जिसे बनाने के लिए धीर लोग महान् उपक्रम का विस्तार करते हैं, उस कृत्य को दैव छोटी घटना से उलट देता है।

८८८. जिन कमलों का विकास अपने सहस्र करों से प्रखराभ सूर्य करता है, उनका उन्मूलन हाथी के एक हाथ से ही कुपित विधाता करा देता है।

८८९. कोढ से रुग्ण दो पैरवाला मोर अनेक पद वाले साँप को पकड़ लेता है। सहस्र पाद वाला सूर्य बिना जाँघों वाले (अरुण) से चलाया जाता है। सामर्थ्यहीन कम बल वालों के द्वारा यदि बलवानों का पराभव होता है तो यह दैव की लीला ही है कि परिपूर्ण वृत्ति वाले नचाये जाते हैं।

८९०. सबके लिए आश्चर्यकरी सम्पत्ति को प्राप्त करने वाले धन कमाने की इच्छा करने वालों की दुष्कर्म से विरति नहीं होती। कमलालीलावास (लक्ष्मी की लीलाओं का वासस्थान) होते हुए भी हाथी कमलों की अधिक प्राप्ति के लिए उनको उखाड़ फेंकने का पाप क्या नहीं करता ?

८९१. अपरीक्ष्यादृतो भृत्यः स्वामिनामतिसंकटे।
करोति व्यसनापातमजात्योऽसिरिवाहवे॥ ७.११६०

८९२. उत्थाने पातयन् कांश्चित् पतने कांश्चिदुत्क्षिपन्।
वेधाः कन्दलयत्येव कन्दुकक्रीडितभ्रमम्॥ ७.११८८

८९३. पृथिव्यां वीरभोज्यायां क्रमो वा क्वोपयुज्यते।
वीरस्य च सहायोऽस्तु कः स्वबाहुद्वयात्परः॥ ७.१२८८

८९४. यथा चित्तं तथास्य स्यात्कायश्चेत् साहसक्षमः।
तदात्मनिरपेक्षस्य किं न सिद्धयेन्मनीषितम्॥ ७.१३२८

८९५. वैमुख्येन व्रजन्कुर्यात् सांमुख्यैरन्तरा विधिः।
प्रत्यागमभ्रमं सिंह इव व्यावृत्य वीक्षितः॥ ७.१३७०

---

८९१. बिना परीक्षा किया हुआ समादृत भृत्य स्वामी के ऊपर बड़ा संकट पड़ने पर वैसी ही विपत्ति का कारण होता है, जैसे युद्ध में घटिया तलवार।

८९२. उत्थान होने पर किन्हीं को गिराते हुए और पतन होने पर किन्हीं को उठाते हुए विधाता गेंद खेलने की भ्रान्ति प्रदर्शित करता है।

८९३. वीरों के भोगने योग्य पृथिवी पर (परम्परागत) क्रम का क्या उपयोग? अपने बाहुद्वय को छोड़कर वीरों का कौन सहायक है?

८९४. पुरुष के चित्त के समान ही यदि उसका शरीर साहस में समर्थ हो तो उस आत्मनिरपेक्ष पुरुष का कौन अभीष्ट सिद्ध न होगा?

८९५. विधाता विमुख होते हुए भी कभी-कभी संमुख होकर वैसा ही व्यवहार करता है, जैसे मुड़कर देखा गया हुआ सिंह लौटने की भ्रान्ति उत्पन्न करता है।

८९६. कालेन याति क्रिमितां महेन्द्रो महेन्द्रभावं क्रिमिरप्युपैति।
अयं प्रथीयानयमप्रतिष्ठ इत्येष निष्ठाऽनुचितोऽभिमानः ॥
७.१३९६

८९७. कार्यारम्भे फलोल्लासमालोक्य प्रायशो जनैः।
अनानुगुण्यगणनां कुर्वाणैर्न विगर्ह्यते॥ ७.१४२२

८९८. गच्छन् शरीरविच्छेदादपि भस्मावशेषताम्।
कर्पूरः सौरभेणेव जन्तुः ख्यात्याऽनुमीयते ॥ ७.१४३५

८९९. ख्यातिसंरक्षणं नाम जन्तोः कल्पान्तरस्थितिः।
वर्तने कीर्तिकायस्य सम्पूर्णाः परमाणवः॥ ७.१४३७

९००. तुङ्गावपातहठव्यसनी विधाता
स्वोत्पत्तिपद्मकुलजेऽपि सरोजषण्डे।
सङ्कोचिनि द्विजपतावपि शुद्धिवन्ध्ये
मातङ्गहस्तपतनैः कुरुतेऽवमानम्॥

---

८९६. समय आ जाने पर महेन्द्र कीड़े का और कीड़ा महेन्द्र का स्थान ग्रहण करता है। यह बड़ा है, यह प्रतिष्ठा-रहित है—यह निष्ठा अनुचित अभिमान है।

८९७. प्रायः कार्यारम्भ का फल-सम्पन्न होना देखकर अनौचित्य का विचार करनेवाले लोगों के द्वारा भी निन्दा नहीं की जाती।

८९८. शरीर छूटने के बाद राख हो जाने पर प्राणी अपनी ख्याति से वैसे ही जाना जाता है, जैसे कपूर अपनी सुगन्ध से।

८९९. यश का संरक्षण ही प्राणी की युगान्तर स्थिति है। कीर्ति-शरीर के व्यवहार में सम्पूर्ण परमाणु होते हैं।

९००. ऊँचे को नीचे गिराने के हठ का व्यसन करनेवाला विघाता अपने उत्पत्ति-स्थान कमल के कुल में जन्म लेनेवाले सरोज वन को शुद्धिरहित चन्द्रमा के द्वारा संकुचित किये जाने पर हाथी के सूंड़ के प्रहार से तिरस्कृत करता है।

९०१. लक्ष्मीतडिल्लता कीर्तिबलाका शौर्यगर्जितम्।
प्रतापशक्रचापं च भागधेयाम्बुदानुगम्॥ ७.१४५५

९०२. लोकैकचक्षुषि गते परलोकमर्के
लोकः स्वपित्यखिल एव सुखं गृहेषु।
कोऽन्यो विचिन्तयितुमर्हति विश्वमेतत्
तिष्ठेन्मया विरहमेत्य कथं किलेति॥ ७.१६८५

९०३. गोप्यं रहस्यभणितमत्यल्पहृदयातिथि।
अमृतं पारदमिव नाल्पसत्त्वैः सुदुर्जरम्॥ ७.१६९०

९०४. नादौ किञ्चिद्भवति नियतं यच्च पश्चान्न किञ्चित्
मध्येऽकस्मात् सपदि घटयन् सौस्थ्यदौस्थ्यानुरोधम्।
निःशीर्षाङ्घ्रिर्नट इव मुहुः कोपि जन्तुर्नटित्वा
नो जानीमो भवजवनिकान्तर्हितः क्व प्रयाति॥ ७.१७३१

---

९०१. लक्ष्मी रूपी बिजली, कीर्तिरूपी बलाका, शौर्यरूपी गर्जन और प्रतापरूपी इन्द्र धनुष भाग्यरूपी बादल का ही अनुसरण करते हैं।

९०२. संसार के अद्वितीय नेत्र सूर्य के परलोक में जाने पर अखिल लोक घर में सुखपूर्वक सोता है। फिर कौन विचार करे कि मेरा विरह होने पर यह संसार किस प्रकार रहेगा ?

९०३. रहस्य में कही हुई गोपनीय बात को अपने छोटे हृदय का अतिथि बनाकर अल्प सत्त्व वाले लोग वैसे ही नहीं पचा पाते, जैसे अमर बनाने वाले पारद को दुर्बल।

९०४. पहले क्या था—कुछ भी निश्चित नहीं। फिर क्या होगा—वह भी नियत नहीं। बीच (जीवन-काल) में अकस्मात् स्वास्थ्य और रोग के अनुसार कोई प्राणी बिना सिर-पैर के अभिनेता की भाँति नाटक करके संसार की जवनिका से अन्तर्हित होकर कहाँ चला जाता है—हम नहीं जानते।

९०५. जिघांसवः पापकामाः परस्वादायिनश्च ताः।
रक्षांस्यधिकृता नाम तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥ ८.८६

९०६. प्रबोधाधायिनो द्वेष्टि नियतिप्रणयी भवन्।
तपात्ययाहनिद्रान्त इव जन्तुर्गतस्मृतिः॥ ८.३०२

९०७. न भवेत् पविपातेऽपि प्रलयः समयं विना।
प्रसूनमप्यसून्हन्ति जन्तोः प्राप्तावधेः पुनः॥ ८.५३१

९०८. मानोन्नतास्तु विहितस्तुतयः कृतज्ञैः
त्यक्त्वाऽप्यसून् परहितं घटयन्ति सन्तः॥ ८.६९१

९०९. क्लैव्यकृत् भयमापाते मध्यपाते न तादृशम्।
करक्षिप्तं यथा शीतं मज्जने न तथा पयः॥ ८.१०९७

९१०. धिग् राज्यं यत्कृते पुत्राः पितरश्चेतरेतरम्॥
शङ्कमाना न कुत्रापि सुखं रात्रिषु शेरते॥

---

९०५. मारने की इच्छा रखने वाले पापकामी, दूसरे के धन को हड़पने वाले उन लोगों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, जो राक्षसों की सवारी बन चुके हैं।

९०६. नियति (भाग्य) का प्रणयी होने पर पुरुष समझाने वालों से द्वेष करता है, जैसे जाड़े के दिन में सोया हुआ मनुष्य स्मृति खो बैठता है।

९०७. वज्र गिरने पर भी मृत्यु नहीं होती, यदि समय न हो। अवधि आ जाने पर फूल भी प्राण ले लेते हैं।

९०८. मानोन्नत सन्त लोग कृतज्ञ जनों के द्वारा स्तुति किये जाने पर प्राण छोड़कर भी परोपकार करते हैं।

९०९. आरम्भ में भय साहस रहित बना देने वाला होता है, बीच में वैसा नहीं होता। हाथ से छूने में जल जितना शीतल होता है, उतना नहाने में नहीं।

९१०. उस राज्य को धिक्कार, जिसके लिए पिता-पुत्र परस्पर डरते हुए कहीं भी रात में सुख से नहीं सोते।

९११. वैधेयैः स्वार्थलोभान्धैर्यद्वानर्थसमागमः।
सरघोपद्रवः क्षौद्रलुब्धैरिव न चिन्त्यते॥ ८.१२५८

९१२. शालीन् पलालपुरुषोऽवति यः कृशानु--
दग्धाननश्चटकपेटकभीतिदानैः।
त्रातुं स काननतरून् विहितो विदध्यात्
किं तत्र भंजनकृतां वनकुंजराणाम्॥ ८.१४९५

९१३. मुक्ता इमा इति जलं नलिनेषु लीनम्।
ज्ञातृत्वमेतदिति जाड्यमिनेषु लग्नम्।
यज्ज्ञायते किमपि हन्त विमोहिनी सा
शक्तिः श्रियः स्फुरति कापि तदाश्रयायाः॥ ८.२०२६

९१४. अनुबध्नाति भव्यानामुदयेऽभ्युदयान्तरम्॥ ८.२२७५

---

९११. स्वार्थ के लोभ से अन्धे मूर्खों के द्वारा अनर्थ का समागम वैसे ही नहीं विचारा जाता जैसे मधु के लोभी के द्वारा मधुमक्खियों का आक्रमण।

९१२. पुआल का पुरुष, जिसका मुँह अग्नि से जला होता है, शालि-धान की रक्षा चपेटा और घूँसे के भय को प्रस्तुत करके अवश्य ही कर लेता है, पर क्या वह वन के वृक्षों को तोड़-फोड़ करने-वाले वन्य हाथियों से भी बचाने में समर्थ होता है।

९१३. नलिनी पर पड़ा जल, मुक्ता है--यह भ्रम उत्पन्न करता है। यही ज्ञानान्धकार प्रभुओं के सम्बन्ध में भी होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह कोई लक्ष्मी की विमोहिनी शक्ति है, जो सबकी भ्रान्ति का कारण बनती है।

९१४. भव्य लोगों के उदय होने पर दूसरे अभ्युदय भी आते ही हैं।

११५. नायाति वाडवशिखिक्वथनेन तापम्
शैत्यं हिमाद्रिपयसा विशता न चाब्धिः।
कश्चिद् गभीरमनसां सततं विषाद-
काले प्रमोदसमये च समोऽनुभावः॥ ८.२६६६

११६. अवल्लि कुंकुमं पुष्पमपुष्पं क्षीरिणः फलम्।
अकालपर्ययापेक्षं वैराग्यं वा महात्मनाम्॥ ८.३०७८

११७. अम्भोपि प्रवहत्स्वभावमशनैराश्यानमश्मायते
ग्रावाम्भः स्रवति द्रवत्वमुदितोद्रेकेषु चावेयुषः।
कालस्यास्खलितप्रभावरभसं भाति प्रभुत्वेऽद्भुते
कस्यामुत्र विधातृशक्तिघटिते मार्गे निसर्गः स्थिरः॥ ८.३४०६

---

११५. वडवानल की लपटों से समुद्र उबल नहीं पड़ता और न हिमालय के जल के आने से शीतल हो जाता है। गम्भीर मानसवालों का मानसिक सन्तुलन सदा समान रहता है, चाहे विषाद का समय हो या प्रमोद का।

११६. विना वल्लरी के ही केसर में फूल उत्पन्न होता है। खिरनी का फल बिना फूल के ही होता है। महात्माओं का वैराग्य भी समय के परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखता।

११७. बहनेवाला पानी ही वज्र और कीचड़ ही पत्थर बन जाते हैं। पत्थर भी पानी बनकर बहने लगता है, बहाव अतिशयता प्राप्त कर लेता है। अद्भुत प्रभुत्व होने के कारण काल की अचल शक्ति की प्रखरता विराजमान है। किसकी सृष्टि स्थिर है जब यहाँ विधाता की शक्ति के द्वारा (सबको चंचल रखने का) मार्ग बनाया जा चुका है?

नैषधीयचरितम्

९१८. त्यजन्त्यसून्शर्म च मानिनो वरं
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्॥ १.५०

९१९. अचिरादुपकर्तुराचरेदथवात्मौपयिकीमुपक्रियाम्।
पृथुरित्थमथाणुरस्तु सा न विशेषे विदुषामिह ग्रहः॥ २.१४

९२०. ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्।
२.४८

९२१. धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः।
२.५३

९२२. कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते। ३.१७

९२३. सन्दर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन।
३.४९

---

९१८. मानी लोग प्राण और सुख भले ही छोड़ दें किन्तु वे याचना न करने का व्रत नहीं छोड़ते।

९१९. अथवा अपने उपाय से शीघ्र ही उपकारी का उपकार करना चाहिए। वह उपकार बड़ा है अथवा छोटा—इस विशेष में विद्वान् नहीं पड़ते।

९२०. सज्जन अपनी उपयोगिता फल से प्रकट करते हैं, वाणी से नहीं।

९२१. धनियों की बात दूसरी हो, पर सज्जनों के लिये गुणवानों का समागम ही सच्ची निधि है।

९२२. कार्य अपने कारण से गुण ग्रहण करता है।

९२३. चमेली की मृदु माला अत्यन्त कर्कश कुश की रस्सी में थोड़े पिरोई जाती है।

१२४. झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः। ४.११८

१२५. साधने हि नियमोऽन्यजनानां
योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः॥ ५.३

१२६. कर्म कः स्वकृतमत्र न भुंक्ते। ५.१६

१२७. तेन न श्रियमिमां बहुमन्ये स्वोदरैकभृतिकार्यकदर्याम्। ५.१६

१२८. उत्तरोत्तरशुभो हि विभूनां कोऽपि मंजुलतमः क्रमवादः। ५.३७

१२९. याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय बत जन्म न यस्य।
तेन भूमिरतिभारवतीयं न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः॥ ५.८८

१३०. आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः॥ ५.१०३

१३१. दुर्जया हि विषया विदुषामपि। ५.१०९

१३२. स्वतः सतां ह्रीः परतोऽतिगुर्वी। ६.२२

---

१२४. विज्ञ शीघ्र ही दूसरे का आशय समझ लेते हैं।

१२५. साधारण लोगों को साधन की आवश्यकता होती है। योगियों के तो तप से ही सभी काम पूरे होते हैं।

१२६. यहाँ कौन अपने किये का फल नहीं भोगता ?

१२७. मैं इस लक्ष्मी को बहुत नहीं मानता, जो केवल मेरा पेट भरने के लिए प्रयुक्त होने के कारण निन्दित है।

१२८. महापुरुषों की मनोरम बातचीत उत्तरोत्तर अच्छी होती जाती है।

१२९. जिसका जन्म याचक लोगों के मनोरथ पूर्ण करने के लिये नहीं होता, उससे यह पृथ्वी बोझिल हो उठती है, वृक्षों, पर्वतों और समुद्रों से बोझिल नहीं होती।

१३०. कुटिल पुरुषों के साथ सीधा व्यवहार नीति नहीं है।

१३१. विद्वानों के द्वारा भी विषय कठिनाई से जीतने के योग्य हैं।

१३२. सज्जनों को दूसरे की अपेक्षा अपने से अधिक लज्जा होती है।

९३३. वर्षेषु यद्भारतमार्यधुर्याः स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु॥ ६.९७

९३४. महाजनाचारपरम्परेदृशी स्वनाम नामाददते न साधवः।
९.१३

९३५. मृणालतन्तुच्छिदुरा सती स्थिति-
लवादपि त्रुटयति चापलात् किल॥ ९.३१

९३६. चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः। ९.५६

९३७. जनानने कः करमर्पयिष्यति। ९.१२५

९३८. न वस्तु दैवस्वरसाद्विनश्वरम्
सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः॥ ९.१२६

९३९. सतां हि चेतः शुचितात्मसाक्षिका। ९.१२९

९४०. उदेति दोषादपि दोषलाघवं कृशत्वमज्ञानवशादिवैनसः॥
९.१३२

---

९३३. देशों में भारत की और आश्रमों में गार्हस्थ्य की प्रशंसा श्रेष्ठ लोग करते हैं।

९३४. सज्जन अपना नाम नहीं लेते यह श्रेष्ठ लोगों की आचार-परम्परा है।

९३५. सती की मर्यादा मृणाल-तन्तु के समान है, जो थोड़ी चपलता से भी टूट जाती है।

९३६. योग्य व्यक्ति के साथ ही योग्य का साथ होना शोभा पाता है।

९३७. लोगों का मुँह कौन बन्द करेगा।

९३८. दैव की इच्छा से नष्ट होते हुए को देवराज भी नहीं रोक सकता।

९३९. सज्जनों का चित्त ही पवित्रता के सम्बन्ध में अपना साक्षी है।

९४०. दोष से भी दोष घटते हैं, जैसे अज्ञान से पाप की गुरुता घट जाती है।

९४१. यः स्पर्धया येन निजप्रतिष्ठां
लिप्सुः स एवाह तदुन्नतत्वम्। १०.४९

९४२. एकाम्बुबिन्दुव्ययमम्बुराशेः
पूर्णस्य कः शंसति शोषदोषम्॥ १०.६४

९४३. सुज्ञं प्रतीङ्गितविभावनमेव वाचः॥ ११.१०१

९४४. सिते हि जायेत शितेः सुलक्ष्यता। १२.२२

९४५. नार्कातपैर्जलजमेति हिमैस्तु दाहम्। १३.५०

९४६. देवा हि नान्यद्वितरन्ति किन्तु
प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते। १४.९

९४७. मान्येन मन्ये विधिना वितीर्णः स प्रीतिदायो बहुमन्तुमर्हः।
१४.८७

---

९४१. जो किसी की स्पर्धा करते हुए अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, वह उन (अपने प्रतिद्वन्दी) की उन्नति ही प्रकट करता है।

९४२. पूर्ण समुद्र में एक बूँद का व्यय होने पर उसके सूखने का दोष कौन कहेगा ?

९४३. समझनेवाले लोगों के लिए संकेत करना ही कहना है।

९४४. श्वेत वस्तुओं के बीच कालिमा सरलता से परिलक्षित होती है।

९४५. कमल सूर्य के आतप से नहीं, हिम से दाह प्राप्त करता है।

९४६. देवता और कुछ तो नहीं देते किन्तु प्रसन्न होकर सद्बुद्धि तो देते ही हैं।

९४७. मान्य व्यक्ति के द्वारा सत्कारपूर्वक दिया हुआ प्रेम का दान सर्वोच्च प्रतिष्ठित है।

भामिनी-विलासः

प्रास्ताविक-विलासः

९४८. कमलिनि मलिनीकरोषि चेतः
किमिति बकैरवहेलितानभिज्ञैः।
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः॥ ८

९४९. पाटीर तव पटीयान् कः परिपाटीमिमामुरीकर्त्तुम्।
यत् पिंषतामपि नृणां पिष्टोऽपि तनोषि परिमलैः पुष्टिम्॥ ११

९५०. नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥ १२

९५१. उपरिकरवालधाराकाराः क्रूरा भुजङ्गमपुंगवात्।
अन्तः साक्षाद् द्राक्षादीक्षागुरवो जयन्ति केऽपि जनाः॥ १३

---

९४८. हे कमलिनि, अज्ञानी बगुलों से उपेक्षित होने पर क्यों चित्त को खिन्न करती हो। परिपक्व मकरन्द के रसज्ञ भ्रमर संसार में दीर्घायु हों (वे तो तुम्हारा आदर करेंगे ही।)

९४९. हे चन्दन, तुम्हारी रीति को अपनाने में कौन मनुष्य कुशल है। तुम तो पीसे जाते हुए भी पीसने वाले को अपनी सुगन्धि से सुरभित करते हो।

९५०. हे हंस, यदि तुम्हीं नीर-क्षीर का विवेचन करने में आलस्य करने लगे तो इस संसार में अब और कौन अपने कुलव्रत का पालन करेगा ?

९५१. वे वर्णनातीत महापुरुष विजयी हों, जो ऊपर से तलवार की धार के समान अथवा महानाग से भी बढ़कर क्रूर हैं किन्तु भीतर से वे (अपनी कोमलता के कारण) दाख को भी पाठ पढ़ा सकते हैं।

९५२. तटिनि चिराय विचारय विन्ध्यभुवस्तव पवित्रायाः।
शुष्यन्त्या अपि युक्तं किं खलु रथ्योदकादानम्॥ २१

९५३. नापेक्षा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिर्न च संगतिः।
तथापि हरते तापं लोकानामुन्नतो घनः॥ ३७

९५४. किं खलु रत्नैरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषा ते।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णव वदनं प्रयाति तृषितानाम्॥ ४०

९५५. मुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि।
रे राजहंस वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः॥ ४५

---

९५२. हे नदी, ठीक से विचार कर लो, विन्ध्य पर्वत से उत्पन्न होने वाली और पवित्र तुम्हारे लिए सूखते होने पर भी गली का सड़ा पानी स्वीकार करना क्या उचित है?

९५३. कोई आवश्यकता नहीं, दाक्षिण्य भी नहीं, प्रेम या सङ्गति भी नहीं है। तो भी ऊँचे बादल लोगों का सन्ताप हरते हैं।

९५४. हे समुद्र, इन रत्नों से क्या? तुम्हारे बादल के सदृश शरीर से क्या? जब तुम्हारा पानी प्यासे के मुँह में नहीं पड़ता।

९५५. हे राजहंस, जहाँ मृणालों का समूह तुम्हारे द्वारा खाया गया, पानी पीया गया और कमलों का उपभोग किया गया, उस सरोवर का प्रत्युपकार अब अपने किस काम से करोगे? बताओ।

९५६. निसर्गादारामे तरुकुलसमारोपसुकृती
कृती मालाकारो बकुलमपि कुत्रापि निदधे।
इदं को जानीते यदयमिह कोणान्तरगतो
जगज्जालं कर्त्ता कुसुमभरसौरभ्यभरितम्॥ ५२

९५७. विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव॥

९५८. औदार्यं भुवनत्रयेऽपि विदितं सम्भूतिरम्भोनिधेः
वासो नन्दनकानने परिमलो गीर्वाणचेतोहरः।
एवं दातृगुरोर्गुणाः सुरतरोः सर्वेऽपि लोकोत्तराः
स्यादर्थिप्रवरार्थितार्पणविधावेको विवेको यदि॥ ६४

९५९. विश्वास्य मधुरवचनैः साधून्ये वंचयन्ति नम्रतमाः।
तानपि दधासि मातः काश्यपि यातस्तवापि च विवेकः॥ ६६

---

९५६. वृक्षों के समूह के रोपने के कारण पुण्यशाली एवं कुशल माली ने स्वभावतः उद्यान में कहीं मौलिश्री को भी स्थान दे दिया। पर जानता कौन था कि कोने में पड़ा हुआ यह विश्वमण्डल को अपनी पुष्पराशि के सुगन्ध से भर देगा ?

९५७. विद्वानों के मुख से सहसा बातें बाहर नहीं निकलतीं और यदि कहीं निकलीं ही तो हाथी के दाँत की तरह कभी परावर्तित नहीं होतीं।

९५८. तीनों लोकों में उदारता प्रख्यात है, जन्म समुद्र से हुआ है, वास नन्दन वन में है, सुगन्ध देवताओं के चित्त को हर लेती है। इस प्रकार कल्पवृक्ष में श्रेष्ठ दाता के सभी लोकोत्तर गुण हैं यदि कहीं उसमें श्रेष्ठ याचकों की प्रार्थना को पूरा करने की विवेचन-शक्ति भी होती।

९५९. हे पृथिवि, जो अत्यन्त विनीत बन कर साधुओं को मीठी बातों से विश्वास देकर ठगते हैं, उन जैसे दुष्टों को भी तुम धारण करती हो। तुम्हारा विवेक कहाँ चला गया ?

९६०. अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्तिः
अन्यैव कापि रचना वचनावलीनाम्।
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्तहृद्या
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः॥ ६७

९६१. आपद्गतः खलु महाशयचक्रवर्ती
विस्तारयत्यकृतपूर्वमुदारभावम्।
कालागुरुर्दहनमध्यगतः समन्तात्
लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति॥ ६८

९६२. विश्वाभिरामगुणगौरवगुम्फितानां
रोषोऽपि निर्मलधियां रमणीय एव।
लोकंपृणैः परिमलैः परिपूरितस्य
कश्मीरजस्य कटुतापि नितान्तरम्या॥ ६९

---

९६०. विद्वानों का संसार का उपकार करने वाली मन की प्रवृत्ति विचित्र ही होती है। उनकी वाणी की रचना विलक्षण होती है। उनकी कृति लोकोत्तर होती है। आकार दुःखियों को प्रसन्न कर देने वाला होता है। विद्वानों का सब कुछ वाणी की परिधि से दूर होता है।

९६१. महापुरुषों में जो चक्रवर्ती होता है, वह विपत्ति पड़ने पर एक अपूर्व ही उदार भाव को प्रसारित करता है। कालागुरु चन्दन चारों ओर से आग में पड़ने पर लोकोत्तर सुगन्ध प्रकट करता है।

९६२. संसार को मनोरम लगनेवाले गुणों की अधिकता से सम्पन्न निर्मल बुद्धिवाले लोगों का क्रोध भी रमणीय होता है। लोगों को प्रसन्न कर देनेवाली सुगन्ध से भरी हुई कश्मीर की केसर की कटुता भी नितान्त रम्य होती है।

९६३. गीर्भिगुरूणां परुषाक्षराभिः
तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां
न जातु मौलौ मणयो वसन्ति॥ ७१

९६४. सत्पूरुषः खलु हिताचरणैरमन्दम्
आनन्दयत्यखिललोकमनुक्त एव।
आराधितः कथय केन करैरुदारैः
इन्दुर्विकासयति कैरविणीकुलानि॥ ७३

९६५. परार्थव्यासङ्गादुपजहदथ स्वार्थपरताम्
अभेदैकत्वं यो वहति गुणभूतेषु सततम्।
स्वभावाद्यस्यान्तः स्फुरति ललितोदात्तमहिमा
समर्थो यो नित्यं स जयतितरां कोऽपि पुरुषः॥ ७४

---

९६३. गुरुओं की परुषाक्षरवाली वाणी से तिरस्कृत लोग महत्त्व प्राप्त करते हैं। सान पर घिसे बिना मणि राजाओं के सिर पर स्थान नहीं पाते।

९६४. सत्पुरुष बिना कहे हुए ही अपने सदाचार से सभी लोगों को पूर्णतया आनन्दित करते हैं। बताइये, किसके द्वारा कहे जाने पर चन्द्रमा अपनी उदार किरणों से कुमुदिनियों को विकसित कर देता है?

९६५. दूसरे का काम बनाने के लिए जिसने अपनी स्वार्थपरता छोड़ दी है, अपने से हीन लोगों के प्रति भी जो सदा भेदरहित एकता का भाव रखता है, जिसके हृदय में स्वभावतः ललित और उच्च महिमा विकसित होती है और जो नित्य समर्थ है, वह विलक्षण पुरुष सर्वोत्कृष्ट है।

९६६. किं तीर्थं हरिपादपद्मभजनं किं रत्नमच्छा मतिः
किं शास्त्रं श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदयः।
किं मित्रं सततोपकाररसिकं तत्त्वावबोधः सखे
कः शत्रुर्वद खेददानकुशलो दुर्वासनानां चयः॥ ८१

९६७. निष्णातोऽपि च वेदान्ते साधुत्वं नैति दुर्जनः।
चिरं जलनिधौ मग्नो मैनाक इव मार्दवम्॥ ८२

९६८. धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां
घर्मव्यथां वहति शीतभवां रुजं च।
यो देहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतोः
तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु॥ ८९

९६९. गिरयो गुरवस्तेभ्योऽप्युर्वी गुर्वी ततोऽपि जगदण्डम्।
तस्मादप्यतिगुरवः प्रलयेऽप्यचला महात्मानः॥ ९२

---

९६६. तीर्थ क्या है? हरिपादपद्मभजन। रत्न क्या है? स्वच्छ बुद्धि। शास्त्र क्या है? जिसके सुनने से द्वैत रूपी अन्धकार का उदय न हो। सदैव उपकार-रसिक मित्र क्या है? तत्त्वावबोध। हे मित्र, यह बताओ कौन खेद पहुँचाने में कुशल शत्रु है? दुर्वासनाओं का समूह।

९६७. दुर्जन वेदान्त का पण्डित होने पर भी अच्छा नहीं बन जाता। चिर-काल से समुद्र में मग्न होने पर भी मैनाक पर्वत मृदु नहीं बन पाया।

९६८. उस महादानी श्रेष्ठ वृक्ष को नमस्कार है, जो पुष्प, पत्र और फल की राशि का भार धारण करता है, घाम सहता है और शीत से उत्पन्न रोग को भी भोगता है। वह वृक्ष दूसरों के सुख के लिये अपने शरीर को अर्पित कर देता है।

९६९. पर्वत महान् हैं। उनसे बड़ी पृथ्वी और उससे बड़ा ब्रह्माण्ड है। उस ब्रह्माण्ड से भी बहुत बड़े वे महात्मा हैं, जो प्रलय में भी अचल होते हैं।

९७०. स्वार्थं धनानि धनिकात् प्रतिगृह्णतो यत्
आस्यं भजेन्मलिनतां किमिदं विचित्रम्।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम्॥ ९६

शृङ्गार-विलासः

९७१. तदवधि कुशली पुराणशास्त्र-
स्मृतिशतचारुविचारजो विवेकः।
यदवधि न पदं दधाति चित्ते
हरिणकिशोरदृशो दृशोर्विलासः॥ १३

९७२. उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त मतिपथं नीता।
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद् बहिर्याति॥ ३८

---

९७०. धनी से अपने लिए धन लेने वाले का मुँह यदि काला हो तो क्या विचित्रता है? दूसरों के लिए भी समुद्र से जल लेनेवाला मेघ पूरा का पूरा ही काला हो जाता है।

---

९७१. सैकड़ों पुराण, शास्त्र और स्मृतियों के अध्ययन के फलस्वरूप विवेक तभी तक समर्थ रहता है, जब तक मृगनयनी के कटाक्ष हृदय में स्थान नहीं बना लेते।

९७२. उपनिषद् भलीभाँति पीये गये, गीता भी बुद्धि-मार्ग से परिशीलित की गई। तब भी चन्द्रवदना मेरे मानस-सदन से बाहर नहीं जाती।

शान्तविलासः

९७३. सन्त्येवास्मिन् जगति बहवः पक्षिणो रम्यरूपाः
तेषां मध्ये मम तु महती वासना चातकेषु
यैरध्यक्षैरथ निजसखं नीरदं स्मारयद्भिः
चित्तारूढं भवति किमपि ब्रह्मकृष्णाभिधानम्॥ ११

९७४. भवग्रीष्मप्रौढातपनिवहसंतप्तवपुषः
बलादुन्मूल्य द्राङ्‌निगडमविवेकव्यतिकरम्।
विशुद्धेऽस्मिन्नात्मामृतसरसि नैराश्यशिशिरे
विगाहन्ते दूरीकृतकलुषजालाः सुकृतिनः॥ १४

९७५. गिरां देवी वीणागुणरणनहीनादरकरा
यदीयानां वाचममृतमयमाचामति रसम्।
वचस्तस्याकर्ण्य श्रवणसुभगं पण्डितपते-
रधुन्वन्मूर्धानं नृपशुरथवायं पशुपतिः॥ २७

---

९७३. इस संसार में बहुत से रम्य रूप वाले पक्षी हैं। इन सब से चातक के प्रति मेरा विशेष अनुराग है, जो प्रत्यक्ष ही अपने बन्धु मेघ का स्मरण कराते हुए कृष्ण नामवाले अनिर्वचनीय ब्रह्म को स्मृति-पथ में ला देता है।

९७४. संसार रूपी ग्रीष्म में प्रखर आतप समूह से संतप्त शरीरवाले पुण्यशाली लोग बलपूर्वक अविवेक राशि के बन्धन को सहसा तोड़कर अपने कलुष-जाल को दूर करके विशुद्ध आध्यात्मिक सुधा-सरोवर में स्नान करते हैं, जो सरोवर नैराश्य के कारण शीतल है।

९७५. वह पुरुष या तो शिव ही है नहीं तो पशु ही है, यदि वह उस कविराज की श्रवण सुखद वाणी को सुनकर झूमने नहीं लगता, जिसकी वाणी के अमृत-रस का आचमन स्वयं सरस्वती करती है और उसके हाथ वीणा-तन्त्री का अणुरणन करने से रुक जाते हैं।

व्यासः

९७६. अहो बत महत्कष्टं विपरीतमिदं जगत्।
येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यति॥

९७७. अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्धयवज्ञानमवमानं च केवलम्॥

९७८. आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स वृथा नीयते येन तस्मै नृपशवे नमः॥

९७९. तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन पण्डितः।
नापरीक्ष्य तरं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥

९८०. एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारा सहस्रशः॥

---

९७६. बड़ी कष्ट की बात है। यह संसार विपरीत है। जिससे अच्छा मनुष्य लज्जित होता है, उसी से असाधु सन्तुष्ट होता है।

९७७. बृहस्पति भी असमय बात बोलते हुए अपनी बुद्धि का अनादर और कोरी निन्दा प्राप्त करते हैं।

९७८. आयु का एक क्षण भी कोटि स्वर्ण मुद्राओं से नहीं मिल सकता। वह (क्षण) जिसके द्वारा वृथा बिताया जाता है, उस नृपशु को नमस्कार।

९७९. पण्डित एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है। दूसरा स्थान देखे बिना पहला स्थान न छोड़े।

९८०. अकेले चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है, सहस्रों तारे नहीं दूर कर पाते।

९८१. गच्छन्पिपीलको याति योजनानां शतान्यपि।
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

९८२. वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः।
स एव दीपनाशाय क्षीणे कस्यास्ति सौहृदम्॥

९८३. गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम्।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः॥

९८४. संभोजनं संकथनं, संप्रश्नोऽथ समागमः।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कथंचन॥

९८५. अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते॥

९८६. यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय॥

---

९८१. चलते हुए चींटा सैकड़ों योजन पार कर जाता है। न चलता हुआ गरुड़ एक पद भी नहीं जाता।

९८२. वायु वन जलानेवाले अग्नि का मित्र है। वह दीप बुझाने के लिए भी (कारण है)। क्षीण का कोई मित्र नहीं।

९८३. गुण के लिए यत्न किया जाय, आडम्बर से क्या प्रयोजन? दूध से रहित गायें घण्टा बाँधने से नहीं बिकतीं।

९८४. साथ भोजन, साथ बातचीत, कुशल-प्रश्न और साथ चलना परिचित लोगों के साथ होना चाहिए। कभी उनसे विरोध न करे।

९८५. मनुष्य को बिना माँगे जैसे दुःख आते हैं, वैसे ही सुख भी आते हैं। केवल (सुख के साथ) दैन्य (हीनता की भावना) का प्रदर्शन क्यों?

९८६. यदि एक ही काम से जगत् को वश में करना चाहते हो तो अपनी जीभ को परनिन्दा से वैसे ही बचाओ, जैसे खेती को गौओं से।

९८७. गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
इह चेत्स्यान्न फलदा फलदा साऽन्यजन्मनि॥

९८८. अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति॥

९८९. परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानाति जानन्नपि विमुह्यति॥

९९०. न्यायेनोपार्जिता दत्ता काकिण्यपि महाफला।
अन्यायेनार्जिता दत्ता न परार्थाः सहस्रशः॥

९९१. एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर।
इत्थमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः॥

९९२. वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे।
नरकात्क्षीयते पापं कुगृहात्परिवर्धते॥

---

९८७. अवस्था बीत जाने पर भी बुद्धिमानों के द्वारा विद्या पूरे मन से ग्रहणीय है। यदि वह इस लोक में फल देनेवाली नहीं है तो वह दूसरे जन्म में फल देगी।

९८८. यदि सज्जनों के मार्ग पर पूरा नहीं चला जा सकता तो थोड़ा ही चले। सन्मार्ग पर चलने वाला पुरुष नष्ट नहीं होता है।

९८९. दूसरे की निन्दा में सभी सदा निपुण होते हैं। कोई अपना दोष नहीं जानता। जानते हुए भी अनजान रहता है।

९९०. न्याय से प्राप्त दान दी हुई कौड़ी महाफल देती है किन्तु अन्याय से प्राप्त दूसरों का हजार धन भी फल नहीं देता।

९९१. आओ, जाओ, गिरो, उठो, बोलो, चुप रहो—इस प्रकार आशा-पाश से बाँधे हुए याचकों से धनी लोग खेला करते हैं।

९९२. नरक में रहना अच्छा, किन्तु दुश्चरित घर में रहना ठीक नहीं। नरक से पाप का क्षय होता है, बुरे घर से (पाप) बढ़ता है।

९९३. न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्।।
९९४. न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः।।
९९५. आपत्सु किं विषादेन सम्पत्तौ विस्मयेन किम्।
भवितव्यं भवत्येव कर्मणामेष निश्चयः।।
९९६. यथा छायातपौ नित्यं सुसम्बद्धौ निरन्तरम्।
तथा कर्म च कर्ता च सम्बद्धौ सर्वजन्तुषु।।
९९७. जन्मान्तरशताभ्यस्ता विषयेषु मतिर्नृणाम्।
जरद्गौरिव सस्येभ्यः सा हि दुःखेन वार्यते।।
९९८. आशा बलवती कष्टं नैराश्यं परमं सुखम्।
९९९. बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितै रञ्जितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते।।

---

९९३. पशुपालक की भाँति लाठी लेकर देवता रक्षा नहीं करते। जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि से समायुक्त कर देते हैं।
९९४. बुद्धि धनलाभ के लिए नहीं, जड़ता धनहीनता के लिए नहीं। प्राज्ञ ही लोगों के क्रमिक वृत्तान्त को जानता है, दूसरा नहीं।
९९५. आपत्ति में विषाद क्यों, सम्पत्ति में अभिमान क्यों ? जो होना है, वह होगा ही—यह कर्मों का निश्चय है।
९९६. जैसे छाया और धूप नित्य निरन्तर सुसम्बद्ध हैं, वैसे ही कर्म और कर्ता सभी प्राणियों से सम्बद्ध हैं।
९९७. लोगों की मति विषयों के प्रति सैकड़ों जन्मों से प्रवृत रही है। जैसे सस्य से बूढ़ी गाय हटाना कठिन है, वैसे ही विषयों से बुद्धि को।
९९८. बलवती आशा कष्टप्रद है। नैराश्य परम सुख है।
९९९. चेहरे पर झुर्रियाँ छा गईं। सिर के बाल श्वेत हो गये। अंग शिथिल हो गये। फिर भी लालच जोर पकड़ती जा रही है।

१०००. सेवकादापरो मूर्खस्त्रैलोक्येऽपि न विद्यते।
दिने दिने नमन्मोहादुन्नतिं योऽभिवाञ्छति ॥

१००१. एतावज्जन्मसाफल्यं यदनायत्तवृत्तिता।
ये पराधीनजन्मानस्ते चेज्जीवन्ति के मृताः ॥

१००२. अपकारिषु मा पापं चिन्तयस्व महामते।
स्वयमेव हि नश्यन्ति कूलजाता इव द्रुमाः ॥

प्रकीर्णकानि

१००३. पित्रास्येदं कृतमिति तत्कर्मणि योजयेन्न दुष्पुत्रम्।
हवनविधौ हव्यभुजां तिलं प्रशंसन्ति न तु तैलम्। अर्गट

१००४. सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः। कमलायुध

१००५. कः स्वभावगभीराणां जानीयाद्बहिरापदम्। कल्हण

१०००. सेवक से बढ़कर मूर्ख त्रिलोक में भी नहीं है। प्रतिदिन मोह से नत रहते हुए भी वह उन्नति चाहता है।

१००१. यहीं तक जन्म की सफलता है कि स्वाधीन वृत्ति हो। जो पराधीन जीवनवाले हैं, यदि वे जीवित हैं तो मरा कौन है?

१००२. हे महामते, अपकार करनेवालों का अनिष्ट मत सोचो। वे तो स्वयं ही किनारे पर उत्पन्न वृक्ष की भाँति नष्ट हो जाते हैं।

१००३. इसके पिता के द्वारा यह काम किया गया, इस विचार से बुरे पुत्र को उस काम में न लगा दे। हवन-विधि में देवताओं के लिए तिल की प्रशंसा की गई है, तेल की नहीं!

१००४. जिसके वश में होने से सब कुछ स्मरणीय मात्र रह गये, उस काल को नमस्कार।

१००५. स्वभाव से गम्भीर लोगों की आपत्ति को बाहर से कौन जान सकता है?

१००६. जीवताऽपि शवेनेन कृपणेन न दीयते ।
मांसं वर्धयतानेन काकस्योपकृतिः कृता ।। कविराज

१००७. सज्जना एव साधूनां प्रथयन्ति गुणोत्करम् ।
पुष्पाणां सौरभं प्रायस्तन्वते दिक्षु मारुताः ।। कुसुमदेव

१००८. पातितोऽपि कराघातैरुत्पत्यैव कन्दुकः ।
प्रायेण हि सुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ।। क्षेमेन्द्र

१००९. उदेति सविता रक्तो रक्त एवास्तमेति च ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ।। क्षेमेन्द्र

१०१०. गुणवज्जनसम्पर्काद्याति स्वल्पोऽपि गौरवम् ।
पुष्पमालानुषङ्गेण तृणं शिरसि धार्यते ।। क्षेमेन्द्र

१०११. नमोऽस्तु दैवाय यथेष्ट कर्त्रे । क्षेमेन्द्र

१००६. जीवनकाल में शव की भाँति कृपण के द्वारा दान नहीं दिया जाता । उसके द्वारा अपना मांस बढ़ाकर कौवे का उपकार तो किया ही जाता है ।

१००७. सज्जन ही सज्जनों की गुणावली का प्रचार करते हैं । वायु (देव) ही प्रायः दिशाओं में पुष्पों के सौरभ को फैलाते हैं ।

१००८. कराघातों से गिराया हुआ भी कन्दुक ऊपर उठ ही जाता है । सुचरित वाले लोगों की विपत्तियाँ प्राय अस्थायी होती हैं ।

१००९. सूर्य लाल उदित होता है, लाल ही अस्त होता है । सम्पत्ति और विपत्ति में महापुरुषों की एकरूपता होती है ।

१०१०. गुणी लोगों के सम्पर्क से छोटे भी गौरव पाते हैं । पुष्प-माला के साथ होने से तृण भी सिर पर धारण किया जाता है ।

१०११. दैव को नमस्कार है—जैसा चाहे कर लेता है ।

१०१२. अनुहरतः खलसुजनावग्रिमपाश्चात्यभागयोः सूच्याः।
एकः कुरुते छिद्रं गुणवानन्यः प्रपूरयति ।। गोभट्ट
१०१३. दृढतरनिबद्धमुष्टेः कोषनिषण्णस्य सहजमलिनस्य ।
कृपणस्य कृपाणस्य च केवलमाकारतो भेदः।। गोभट्ट
१०१४. उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि। चन्द्रगोपी
१०१५. कृष्णं वपुर्वहतु चुम्बतु सत्फलानि
रम्येषु संचरतु चूतवनान्तरेषु।
पुंस्कोकिलस्य चरितानि करोतु नाम
काकः किल ध्वनिविधौ ननु काक एव।। जयवर्धन
१०१६. सर्वस्यैव हि लोकस्य बहुमानं यदात्मनि।
विष्णोर्मायासहस्रस्य इयमेका गरीयसी।। ज्ञानश्री

१०१२. खल और सुजन सुई की नोक और पीछे के भाग के समान आचरण करते हैं। एक (नोक) तो छेद करता है और दूसरा (पीछे का भाग) गुणवान् (धागे वाला) होने से छेद को बन्द कर देता है।

१०१३. मुट्ठी को कस कर बाँधे हुए, अपने कोश पर बैठे हुए और स्वभावतः उदास रहनेवाले कृपण की केवल आकार से ही कृपाण से भिन्नता प्रतीत होती है। कृपाण की भी मुट्ठियाँ मजबूती से बँधी होती हैं, वह कोष में पड़ा रहता है और सहज ही मलिन होता है।

१०१४. विष तो खाने पर मारता है पर विषय स्मरण मात्र से ही मारते हैं।

१०१५. काला शरीर रखे, अच्छे फल चखे, आम के रम्य वनों में विचरे—कोयल के सभी चरितों का अनुकरण करे। फिर भी कौवा बोलने में कौवा ही रहेगा।

१०१६. सभी लोगों का अपने लिए बहुमान होता है। विष्णु की सहस्रों मायाओं में से यह एक सबसे बढ़कर है।

१०१७. काकैः सह विवृद्धस्य कोकिलस्य कला गिरः।
खलसङ्गेऽपि नैष्ठुर्यं कल्याणप्रकृतेः कुतः।। तक्षक

१०१८. आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म।
स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः।। दामोदरगुप्त

१०१९. लक्ष्मीसम्पर्करूपोऽयं दोषः पद्मस्य निश्चितम्।
यदयं गुणसन्दोहधामनीन्दौ पराङ्मुखः।। प्रकाशवर्ष

१०२०. धात्रा श्रियं निदधता प्रखलेषु नित्यम्।
अत्युज्ज्वलः खलु घटे निहितः प्रदीपः।। प्रकाशवर्ष

१०२१. अल्पेनैव गुणेन हि कश्चिल्लोके प्रसिद्धिमुपयाति।
एकेन करेण गजः करी न सूर्यः सहस्रेण।। प्रकाशवर्ष

१०२२. स्पृहणीयाः कस्य न ते सुमतेः सरलाशया महात्मानः।
त्रयमपि येषां सदृशं हृदयं वचनं तथाचारः।। बल्लभदेव

१०१७. कौवे के साथ संवर्धित कोयल की वाणी में मधुरता होती है। दुष्टों के साथ में होने पर भी कल्याणमयी प्रकृति वालों में निठुरता नहीं आती।

१०१८. आरोग्य, विद्वत्ता, सज्जनों से मैत्री, उच्च कुल में जन्म और स्वाधीनता पुरुष के लिए धन के बिना भी महान् ऐश्वर्य हैं।

१०१९. लक्ष्मी के सम्पर्क के अनुरूप यह दोष निश्चय ही कमल में है कि वह गुणावली के धाम चन्द्रमा के उगने पर पराङ्मुख हो जाता है।

१०२०. विधाता के द्वारा धन की राशि दुष्टों के हाथ सौंपी गयी, मानो अत्यन्त उज्ज्वल दीप घड़े में रख दिया गया।

१०२१. थोड़े गुण से ही कोई पुरुष संसार में प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है। एक कर से हाथी करी है, पर सहस्र कर से सूर्य करी नहीं हुआ।

१०२२. किस सुमति के लिए सरल आशय वाले महात्मा स्पृहणीय न होंगे, जिनके हृदय, वचन और आचार—तीनों ही समान हैं।

१०२३. मुखेनैकेन विध्यन्ति पादमेकस्य कण्टकाः।
दूरान्मुखसहस्रेण सर्वप्राणहराः खलाः॥ भट्ट पृथ्वीधर

१०२४. असम्भवो हेममयस्य जन्तोः
तथापि रामो लुलुभे मृगाय॥ भट्टानन्दक

१०२५. स्वयमाहतगजभोक्तुः सिंहस्य हि दुर्लभा वृत्तिः। भट्टार्क

१०२६. प्राप्ते वसन्तमासे वृद्धिं प्राप्नोति सकलवनराजिः।
यन्न करीरे पत्रं तत्किं दोषो वसन्तस्य॥ भल्लट

१०२७. सुजनः परुषाभिभाषिणो यदि कः स्यादपरोऽपि मंजुवाक्।
यदि चन्द्रकराः सवह्नयः ननु जायेत सुधा कुतोऽन्यतः॥
मंगल

१०२८. वैद्यनाथ नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव।
त्वयि संन्यस्तभारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते॥ मय

१०२३. कण्टक एक मुख से किसी के एक पैर को (केवल) बींधते हैं। खल दूर से ही सहस्र मुख से सब का प्राण हरते हैं।

१०२४. सोने का मृग असम्भव है, तथापि राम को उसके लिए लोभ उत्पन्न हुआ।

१०१५. अपने ही मारे हुए हाथी को खाने वाले सिंह की वृत्ति दुर्लभ होती है।

१०२६. वसन्त मास आने पर सभी वनराजि समृद्धि प्राप्त करती है। करीर में यदि पत्ते न लगें तो इसमें वसन्त का क्या दोष ?

१०२७. यदि सज्जन भी परुष बोलने वाले हों तो फिर दूसरा कौन मधुर बोलेगा ? यदि चन्द्र की किरणें आग भरी हों तो अमृत कहाँ से निकलेगा ?

१०२८. हे वैद्यनाथ, सारे मानव का विनाश करने वाले आपको नमस्कार। आप पर भार सौंप कर यह यमराज सुख पाता है।

१०२९. ते सावत्रो भुवनमण्डलमौलिभूता।
ये साधुतां निरुपकारिषु दर्शयन्ति।। रत्नाकर

१०३०. सुजनो न याति वैरं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि।
छेदेऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य।। रविगुप्त

१०३१. दूरेऽपि परस्यागसि पटुर्जना नात्मनः समीपेऽपि।
स्वं व्रणमक्षि न पश्यति शशिनि कलङ्कं निरूपयति।। रविगुप्त

१०३२. न केवलं मनुष्येषु दैवं देवेष्वपि प्रभुः।
सति मित्रे धनाध्यक्षे चर्मप्रावरणो हरः।। रविगुप्त

१०३३. तुल्यवर्णच्छदः कृष्णः कोकिलैः सह संगतः।
केन विज्ञायते काकः स्वयं यदि न भाषते।। वाल्मीकि

१०३४. सर्वत्र सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।। वाल्मीकि

१०२९. वे ही सत्पुरुष भुवन-मण्डल के शिरोमणि हैं, जो उपकारहीन लोगों के प्रति साधुता प्रकट करते हैं।

१०३०. परोपकार में तत्पर अपने विनाश के समय भी वैरी नहीं बनते। कटने पर भी चन्दन वृक्ष (काटने वाली) कुल्हाड़ी का मुँह सुगन्धित कर देता है।

१०३१. लोग दूर होने पर भी दूसरे के दोष-दर्शन में निपुण होते हैं। अपने दोष को समीप होने पर भी नहीं देख पाते। आँख अपने घाव को नहीं देख पाती, चन्द्रमा में कलङ्क को देखती है।

१०३२. केवल मनुष्यों में ही नहीं देवताओं पर भी दैव का प्रभाव है। धनाध्यक्ष कुबेर के मित्र होने पर भी शिव को चमड़ा ही ओढना पड़ता है।

१०३३. कोकिल के समान ही पंखों का रङ्ग होता है, कोयल का साथ रखता है। ऐसे कौवे को कौन समझ पाता, यदि वह स्वयं न बोलता ?

१०३४. जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके लिए सर्वत्र सम्पत्तियाँ हैं।

१०३५. एते स्निग्धतमा इति मा मा क्षुद्रेषु कुरुत विश्वासम्।
सिद्धार्थानामेषां स्नेहोऽप्यश्रूणि पातयति ।। शतानन्द

१०३६. सद्यो विभिद्यते नूनं दरिद्रतनुपंजरम्।
यदि न स्यात् मनोराज्यरज्जुभिर्दृढसंयतम्।। शुभाङ्ग

१०३७. अर्थो न सम्भृतः कश्चिन्न विद्या काचिदर्जिता।
न तपः संचितं किंचिद् गतं च सकलं वयः।। सरोक

१०३८. लघीयः प्राज्यं वा 'फलमभिमतं प्राप्तुमनसा,
निरीहेण स्थातुं क्षणमपि न युक्तं मतिमता।
कुलालो दण्डेन भ्रमयति न चेच्चक्रमनिशम्,
शरावः कुम्भो वा न हि भवति सत्यामपि मृदि।।
हरिभट्ट

१०३५. ये सबसे बढ़कर स्नेही हैं--यह देखकर क्षुद्रों पर विश्वास न कर लेना। काम बन जाने पर इनका स्नेह भी आँसू गिरवायेगा।

१०३६. दरिद्र का शरीर-पंजर कभी का छिन्न-भिन्न हो गया होता, यदि कहीं कल्पना के राजत्व की रस्सियों से मजबूती से न बाँधा गया होता।

१०३७. धन नहीं संग्रह किया गया, न विद्या प्राप्त की गई, न तप किया गया और सारा जीवन बीत गया।

१०३८. छोटा या बड़ा अभीष्ट फल पाने की इच्छा वाले मतिमान् पुरुष के द्वारा क्षण भर भी निरीह होकर न बैठा जाय। यदि कुम्हार निरन्तर चक्र को दण्ड से न घुमाये तो मिट्टी रहते हुए भी प्याला या घड़ा नहीं बन सकता।

अन्योक्तयः

१०३९. ये पूर्वं परिपालिताः फलदलच्छायादिभिः प्राणिनः,
विश्रामद्रुम कथ्यतां तव विपत्काले क्व ते साम्प्रतम् ।
एताः संनिधिमात्रकल्पितपुरस्कारास्तु धन्यास्त्वचः,
यासां छेदनमन्तरेण पतितो नायं कुठारस्त्वयि ।। वित्तोक

१०४०. आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्तं
निर्वाप्य दावविधुराणि च काननानि ।
नाना नदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोन्नतश्रीः ।। वित्तोक

१०४१. न स्फूर्जति न च गर्जति
न च करकाः किरति सृजति न च तडितः ।
न च विनिर्मुंचति वात्यां
वर्षति निभृतं महामेघः ।। अचलसिंह

१०३९. हे विश्राम देनेवाले वृक्ष, जो प्राणी फल-दल-छाया आदि से तुम्हारे द्वारा पहले पाले गये थे, वे तुम्हारे काटे जाने के समय कहाँ खिसक गये? तुम्हारी छाल ही धन्य है, जिन्हें तुम्हारे सांनिध्य का पुरस्कार प्राप्त हुआ और अब उनको काटकर ही कुठार तुम्हारे ऊपर गिर सकेगा।

१०४०. हे जलद, सूर्य की गर्मी से झुलसे हुए पर्वत के समूहों को आश्वासन देकर, दावाग्नि से दुःखी वनों को शीतलता प्रदान करके, सैकड़ों नदीनद को भरकर रिक्त हो, यही तुम्हारी सर्वोच्च शोभा है।

१०४१. महामेघ भड़कता नहीं, गर्जता नहीं, ओले नहीं बिखेरता और न बिजली कौंधता है। वह तूफान भी नहीं घहराता। केवल चुपचाप बरसता है।

१०४२. कस्य तृषं न क्षपयसि
न पयसि तव कथय के निमज्जन्ति।
यदि सन्मार्ग-जलाशय
नक्रो न क्रोडमधिवसति ॥ वीर

१०४३. श्रीफलेनामुनैवायं कुरुते किं वानरः।
हसत्युल्लसति प्रेङ्खत्यधस्तादीक्षते जनम् ॥ तरणिनन्दिनः

१०४४. आदाय वारि परितः सरितां शतेभ्यः
किं नाम साधितमनेन महार्णवेन।
क्षारीकृतं च वडवादहने हुतं च
पातालकुक्षिकुहरे विनिवेशितं च ॥

१०४५. हंहो जनाः प्रतिपथं प्रतिकाननं च
तिष्ठन्तु नाम तरवः फलिता नताश्च।
अन्यैव सा स्थितिरहो मलयद्रुमस्य
यद्गन्धमात्रमपि तापमपाकरोति ॥ वल्लण

१०४२. हे सन्मार्ग के जलाशय, यदि तुम्हारी गोद में नक्र का वास न होता तो तुम किसकी प्यास न बुझाते और कौन तुम्हारे जल में नहीं नहाता ?

१०४३. श्रीफल से यह वानर क्या नहीं करता ? हँसता है, उल्लास मानता है, झूलता है और लोगों को हीन देखता है।

१०४४. चारों ओर से सैकड़ों नदियों से जल लेकर इस महासागर ने क्या किया ? जल को खारा बनाया, वडवाग्नि में फूँका और पाताल की कोख में डाला।

१०४५. सज्जनो, प्रत्येक पथ और वन में ऐसे वृक्ष हैं, जो फलते और झुकते हैं, मलयद्रुम (चन्दन) की बात कुछ और ही है, जिसकी गन्ध भी ताप को दूर कर देती है।

१०४६. जलकणवितरणरहितः प्रकटितधवलितवेषः।
चातक रटसि वृथा किं जलदः शारद एषः॥ चर्पटीनाथ

१०४७. भ्रातः पंकज संकोचः कंचित्कालं विषह्यताम्।
सैव प्रभाते शोभा ते भाते दिनकरे भवेत्॥ श्रुत

१०४८. चन्दने विषधरान् सहामहे
वस्तु सुन्दरमगुप्तिमत्कुतः।
रक्षितुं वद किमात्मसौष्ठवं
संचिताः खदिर कण्टकास्त्वया॥ भल्लट

अनुश्रुतानि

१०४९. शिशुरपि रुषा सिंहीसुनुः समाह्वयते गजान्।

१०५०. उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च।
लक्ष्मीः स्वयं वाञ्छति वासहेतोः॥

१०४६. हे चातक, क्यों व्यर्थ रट लगा रहे हो? जलकण का वितरण न करनेवाला फिर भी धवल वेश बनाये हुए यह शरद् का बादल है।

१०४७. भाई कमल, थोड़ी देर के लिए अपने संकोच को सहो? सूर्य के निकलने पर प्रभात के समय तुम्हारी वही शोभा होगी।

१०४८. चन्दन पर विषधरों का होना तो सहा जाता है। सुन्दर वस्तु अरक्षित कैसे रहे? हे खैर (वृक्ष), अपने किस सौष्ठव की रक्षा के लिए तुमने काँटों को चिपका रखा है?

१०४९. सिंहिनी का पुत्र शिशु होने पर भी हाथियों को ललकारता है।

१०५०. उत्साहसम्पन्न, निरलस, क्रियाविधि जाननेवाले को, व्यसनों में असक्त, शूर, कृतज्ञ और दृढ़ मैत्रीवाले को लक्ष्मी स्वयं अपना आश्रय बनाने के लिए चुन लेती है।

१०५१. अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।
पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्ति योग्या अयोग्याश्च॥

१०५२. स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः॥

१०५३. निन्दन्तु नीतिनिपुणा अथवा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः परापततु गच्छतु वा यथेच्छम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रचलयन्ति पदं न धीराः॥

१०५४. अपेक्षन्ते न च स्नेहं न पात्रं न दशान्तरम्।
सदा लोकहिते युक्ता रत्नदीपा इवोत्तमाः॥

१०५५. नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता॥

१०५६. परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति।

१०५१. अश्व, शस्त्र, शास्त्र वीणा, वाणी, पुरुष और स्त्री——ये सभी पुरुष विशेष को पाकर योग्य या अयोग्य होते हैं।

१०५२. जिसके लिए परोपकार करना ही स्वार्थ है, वह मनुष्य सज्जनों में श्रेष्ठ है।

१०५३. नीति-निपुण निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आये या जाये। आज ही मरण हो या दूसरे युग में हो, धीर न्याय के पथ से डिगते नहीं।

१०५४. उत्तम पुरुष स्नेह, पात्र और दशान्तर पाये बिना भी रत्नदीप की भाँति सदैव लोकहित में लगे रहते हैं। स्नेह=तेल, पात्र= दीया, दशान्तर=नई बत्ती।

१०५५. वन में सिंह का अभिषेक और संस्कार नहीं किया जाता। विक्रम के द्वारा प्राप्त सत्त्व वाले (सिंह) की मृगेन्द्रता अपने आप होती है।

१०५६. दूसरे के घर में जाने पर कौन छोटा नहीं हो जाता?

१०५७. शिरसा धार्यमाणोऽपि सोमः सोमेन शम्भुना।
तथापि कृशतां धत्ते कष्टः खलु पराश्रयः ॥

१०५८. वरममी तरवो वनगोचराः
शकुनिसार्थविलुप्तफलश्रियः।
न तु धनाढ्यगृहाः कृपणाः फणाः
निहितरत्नभुजंगमवृत्तयः ॥

१०५९. गृहमध्यनिखातेन धनेन रमते यदि।
स तु तेनानुसारेण रमते किं न मेरुणा ॥

१०६०. कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति ॥

१०६१. दुर्जनः सुजनीकर्तुं यत्नेनापि शक्यते।
संस्कारेण लशुनं कः सुगन्धीकरिष्यति ॥

१०५७. उदात्त शम्भु के द्वारा शिर पर धारण किये जाने पर भी चन्द्रमा कृश हो जाता है। पराश्रय कष्टप्रद ही है।

१०५८. हम वन के रहने वाले वृक्ष ही अच्छे हैं। हमारी फलश्री पक्षियों के समूह के द्वारा समाप्त की जाती है। धन भरे हुए घर वाले कृपण नहीं (अच्छे हैं), जो फण में रत्न रखे हुए साँप के समान आचरण करते हैं।

१०५९. घर में गड़े धन से यदि आनन्द प्राप्त करना है तो उसी प्रकार मेरु से क्यों नहीं आनन्द प्राप्त करता ?

१०६०. कृपण के समान दाता न हुआ और न होगा। धन को (अपने काम के लिए) न छूते हुए ही वह उसे दूसरों के लिए छोड़ देता है।

१०६१. प्रयत्न से दुर्जन को सुजन नहीं बनाया जा सकता। लशुन को संस्कार से कौन सुगन्धित बना सकता है।

१०६२. दुर्जनेनोच्यमानानि वचांसि मधुराण्यपि ।
अकालकुसुमानीव त्रासं संजनयन्ति मे ।।

१०६३. सदा वक्रः सदा क्रूरः सदामानधनापहः ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ।।

१०६४. का नाम बुद्धिहीनस्य विधेस्तस्य विदग्धता ।
कुष्माण्डेषु न यश्चक्रे तैलमूर्णां च दन्तिषु ।।

१०६५. सकषायस्य चित्तस्य काषायैः किं प्रयोजनम् ।

१०६६. नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपकर्षति ।
स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुनापि परिभूयते ।।

१०६७. अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम् ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ।।

१०६८. एक एव खगो मानी वने वसति चातकः ।
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ।।

१०६२. दुर्जन के द्वारा कहे हुए मधुर वचन भी अकाल कुसुम की भाँति मुझे डराते हैं।

१०६३. सदा वक्र, क्रूर, मान और धन हरने वाला जामाता दसवाँ ग्रह है, जो नित्य कन्या-राशि में स्थित रहता है।

१०६४. उस बुद्धिहीन विधाता की चतुरता को क्या कहें, जिसने कुम्हड़े में तेल और हाथी में ऊन न दिया।

१०६५. कषायपूर्ण चित्त के लिए काषाय वस्त्र की क्या आवश्यकता ?

१०६६. मगर अपने स्थान को पाकर हाथी को भी खींच लेता है। वही अपने स्थान से अलग होने पर कुत्ते से भी पराजित होता है।

१०६७. यद्यपि कमल से मण्डित जल सर्वत्र है (फिर भी) हंस का मन मानस-सरोवर के बिना नहीं रमता।

१०६८. वन में एक ही मानी पक्षी चातक बसता है। वह प्यासे ही भले मर जाता है पर केवल इन्द्र की याचना करता है।

१०६९. आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गात्
मां मुंच वागुरिक याहि कुरु प्रसादम्।
अद्यापि घासकवलग्रसनानभिज्ञः
मन्मार्गवीक्षणपरस्तनयो मदीयः॥

१०७०. मत्स्या अपि हि जानन्ति क्षीरनीरविवेचनम्।
प्रसिद्ध राजहंसानां यशः पुण्यैरवाप्यते॥

१०७१. कमलं भवनं रजोऽङ्गरागो
मधुपानं मधुराः प्रियाप्रलापाः।
शयनं मृदुकेसरोपधानं
भ्रमरस्याम्भसि का न राजलीला॥

१०७२. प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रः।

१०७३. अतिपरिचयादवज्ञा भवति विशिष्टेऽपि वस्तुनि प्रायः।
लोकः प्रयागवासी कूपस्नानं सदाचरति॥

१०७४. दूरस्थस्य महार्घता परिभवः संवासतो जायते।

१०६९. हे व्याध, स्तन को छोड़कर मेरा सभी मांस ले लो। मुझे छोड़ दो, जाओ, कृपा करो। आज भी मेरा एक पुत्र है, जो घास का कवल खाना नहीं जानता। वह मेरी राह देख रहा है।

१०७०. मछली भी नीर-क्षीर विवेचन जानती हैं। पर यह (नीर-क्षीर विवेक) राजहंसों का यश प्रसिद्ध है। यश भी पुण्यों से ही मिलता है।

१०७१. भ्रमर के लिए पानी में कौन सी राजलीला नहीं है—भवन कमल है, अंगराग पुष्परज है, पीने के लिए मधु है, साथ ही प्रिया-प्रलाप है और शयन के लिए मृदु केसरोपधान है।

१०७२. सुचरितों से जो पिता को प्रसन्न करता है, वही पुत्र है।

१०७३. अतिपरिचय से विशिष्ट वस्तुओं के प्रति भी अनादर होता है। प्रयागवासी लोग सदा कूप स्नान करते हैं। (गंगा स्नान नहीं।)

१०७४. दूर रहने वाले का मूल्य बढ़ता है और साथ रहने से अनादर होता है।

१०७५. वह्निः समुद्भवति निर्मथनेन काष्ठा—
दम्भो ददाति वसुधा च निखन्यमाना।
गच्छन् प्रयास्यति शनैरपि चाध्वनोन्तम्,
आरब्धकार्य इह किं न नरः करोति॥

१०७६. दानं न दत्तं न तपश्च तप्तं नाराधितौ शङ्करवासुदेवौ।
अग्नौ रणे वा न हुतश्च कायः शरीर किं प्रार्थयसे सुखानि॥

१०७७. धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम्।

१०७८. शशिनि किल कलङ्कः कण्टकं पद्मनाले
गुणवति विधनत्वं चन्दने कृष्णसर्पाः।
उदधिजलमपेयं निर्मितं येन लोके
स जगति खलु दृष्टो निर्विवेको विधाता॥

१०७९. परीक्ष्य सत्कुलं विद्यां वयः शौर्यं सुशीलताम्।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम्॥

१०७५. काठ को मथने से आग उत्पन्न होती है। खोदने से पृथ्वी जल देती है। चलते रहने से मार्ग के अन्त तक शनैः शनैः पहुँच जाता है। काम का आरम्भ करने वाला पुरुष यहाँ क्या नहीं कर लेता ?

१०७६. दान नहीं दिया, तप नहीं किया गया, शंकर और वासुदेव की आराधना नहीं की गई, आग में या युद्ध में होम नहीं कर दिया गया—ऐसे शरीर ! तुम सुख क्यों चाहते हो ?

१०७७. वे धन्य हैं, जो देश का विभाजन और कुल का क्षय नहीं देखते।

१०७८. चन्द्रमा में कलंक, कमलनाल में कण्टक, गुणवानों की निर्धनता, चन्दन में काला साँप, समुद्र का अपेय जल—इन सबका संसार में जिस विधाता के द्वारा निर्माण किया गया वह विधाता विवेक रहित है।

१०७९. अच्छा कुल, विद्या, वय, शौर्य और सुशील की परीक्षा करके निपुण दैव कन्या की भाँति दरिद्रता का दान करता है।

१०८०. भानुः भ्राम्यति यद्वशेन गगने तस्मै नमः कर्मणे।
१०८१. छायाचंचलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः॥
१०८२. सम्पदः जलतरङ्गविलोला
यौवनं त्रिचतुराणि दिनानि।
शारदाभ्रपरिचञ्चलमायुः
किं धनैः परहितानि कुरुध्वम्॥
१०८३. करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तया।
मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम्॥
१०८४. श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्ने चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥
१०८५. अनित्यते जगन्निन्द्ये वन्दनीयासि सम्प्रति।
या करोषि प्रसङ्गेन दुःखानामप्यनित्यताम्॥

१०८०. जिसके वश में होकर सूर्य आकाश में नचाया जाता है, उस कर्म को नमस्कार।

१०८१. सब कुछ छाया की भाँति चंचल देखकर सन्त वन में चले गये।

१०८२. सम्पत्तियाँ पानी की लहरों की भाँति चंचल हैं, यौवन दो-चार दिन का है। शरद् के बादल की भाँति चंचल आयु है, धन से क्या परहित करें?

१०८३. करूँगा, करूँगा, करूँगा—इसी चिन्ता में मरना है—यह तो भूल ही गया।

१०८४. कल का काम आज और अपराह्ण का काम पूर्वाह्ण में कर डालो मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करता कि तूमने क्या कर लिया और तुम्हारे करने के लिए क्या शेष रहा।

१०८५. हे संसार के द्वारा निन्द्य अनित्यते, सम्प्रति तुम वन्दनीय हो, तुम जो प्रसंगतः दुःखों को भी अनित्य बनाती हो।

१०८६. सेवा श्ववृत्तिर्यैरुक्ता तैर्न सम्यगुदाहृतम्।
स्वच्छन्दचारी कुत्र श्वा विक्रीतासुः क्व सेवकः॥

१०८७. तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामपि प्रार्थयेदिति॥

१०८८. लक्ष्मीर्विनयभूषणा।

१०८९. विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

१०९०. शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः
शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः।
इत्यप्रार्थितसर्वलभ्यविभवे दोषोऽयमेको वने
दुष्प्रार्थिनि यत्परार्थघटना बन्ध्यैर्वृथा स्थीयते॥

१०८६. जिन्होंने कहा कि सेवा वृत्ति कुत्ते की वृत्ति है, उन्होंने ठीक नहीं कहा। कहाँ तो स्वाधीन विचरण करनेवाला कुत्ता और कहाँ बिके प्राणवाला सेवक।

१०८७. तिनके से हलकी रूई और रूई से भी हलका याचक होता है। इसको हवा क्यों न उड़ा ले गई कि मेरे पास आया?

१०८८. विनय लक्ष्मी का भूषण है।

१०८९. विद्वत्ता और राजपद दोनों कभी बराबर नहीं हैं। राजा स्वदेश ही में और विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

१०९०. घासकी शय्या, पवित्र शिला का आसन, वृक्षों के नीचे घर, पीने के लिए शीतल सोते का जल, भोजन के लिए कन्द और साथ के लिए मृग—ये सभी विभव वन में विना माँगे ही मिल जाते हैं। वहाँ एक ही दोष है—याचक कठिनाई से मिलते हैं, अतः वहाँ रहना व्यर्थ है क्योंकि परोपकार करना सम्भव नहीं।

१०९१. यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यदश्नासि दिने दिने।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि॥

१०९२. आतुराद्वित्तहरणं मृतादपि पलायनम्।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥

१०९३. रत्नान्यधो नयति जातगुरूणि मोहात्,
ऊर्ध्वं सदा वहति काष्ठतृणं समुद्रः।
तोयानि दूषयति पाति भुजंगलोकम्,
प्रायो महान्भवति कार्यविमूढचेताः॥

१०९४. विजितात्मनां जानानामभवद्यः कृतयुगे दमो नाम।
सोयं विपरीततया मदः स्थितः कलियुगे॥

१०९५. आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्।
कोऽन्यो हिततरस्तस्माद्य एनं विनिवारयेत्॥

१०९१. जो विशिष्ट लोगों के लिए देते हो, जिसे प्रतिदिन खाते हो, उसे ही तुम्हारा धन मानता हूँ। शेष किसी दूसरे का है, जिसकी तुम रक्षा करते हो।

१०९२. आतुर से धन हरना, मरे से भी दूर भागना—यही तो वैद्य का वैद्यत्व है। वैद्य आयु का प्रभु थोड़े हैं।

१०९३. समुद्र श्रेष्ठ रत्नों को मोह से नीचे कर देता है। सदा ही काठ और तिनके को ऊपर रखता है। पानी को दूषित बना देता है, साँपों की रक्षा करता है। अपने काम में मूढ़ चित्त वाला भी प्राय महान् बन जाता है।

१०९४. सत्ययुग में आत्मवशी लोगों का जो दम होता था, वही कलि-युग के विपरीत होने पर मद बन गया।

१०९५. यदि अपने आप ही अपने को अहित से नहीं हटाता तो दूसरा कौन बढ़कर हितकारी है, जो उसको हटाये।

१०९६. क्रोधमेव तु यो हन्ति तेन सर्वे द्विषो हताः।

१०९७. न देवचरितं चरेत्।

१०९८. छायां कुर्वन्ति चान्यस्य तापं तिष्ठन्ति वातपे।
फलन्ति च परार्थाय पादपा इव सज्जनाः॥

१०९९. लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भरेण नमन्ति च।
अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम्॥

११००. क्वाकारणरुषां संख्या संख्याताः कारणक्रुधः।
कारणेऽपि न कुप्यन्ति ये ते जगति पंचषाः॥

११०१. परगुणतत्त्वग्रहणं स्वगुणावरणं परव्यसनमौनम्।
मधुरमशठं च वाक्यं केनाप्युपदिष्टमार्याणाम्॥

१०९६. जो क्रोध को मिटा देता है, उसके द्वारा सभी शत्रु समाप्त कर दिये गये।

१०९७. देवताओं का (बिना समझे-बूझे) अनुकरण न करे।

१०९८. वृक्षों की भाँति सज्जन दूसरे के लिए छाया करते हैं, स्वयं धूप में रहकर गर्मी सहते हैं और दूसरे के लिए फल देते हैं।

१०९९. धन को तण की भाँति मानते हैं, उसके भार से झुक जाते हैं। अहो, महात्माओं का चरित्र भी क्या ही विचित्र है!

११००. बिना कारण के रोष करनेवाले की संख्या कहाँ (सीमित है)। कारण होने पर क्रोध करनेवाले गिनती भर के हैं। जो कारण होने पर भी क्रोध नहीं करते, उनकी संख्या तो पाँच, छः ही है।

११०१. दूसरे के गुण के तत्त्वों को ग्रहण कर लेना, अपने गुण को छिपाये रखना, दूसरे की विपत्ति में मौन रहना, मीठी और सरल बात कहना—यह किसने आर्यों को सिखाया?

११०२. यशो रक्षन्ति न प्राणान् पापाद्बिभ्यति न द्विषः।
अन्विष्यन्त्यर्थिनो नार्थान्निसर्गोऽयं महात्मनाम्॥

११०३. अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

११०४. सद्गुणालङ्कृते काव्ये दोषान् मृगयते खलः।
वने पुष्पफलाकीर्णे करभः कण्टकानिव॥

११०५. निर्गुणमप्यनुरक्तं प्रायो न समाश्रितं जहति सन्तः।
सहवृद्धिक्षयभाजं वहति शशाङ्कः कलङ्कमपि॥

११०६. अस्थानाभिनिवेशी प्रायो जड एव भवति नो विद्वान्।
बालादन्यः कोऽम्भसि जिघृक्षतीन्दोः स्फुरद्बिम्बम्॥

११०२. यश की रक्षा करते हैं, प्राणों की नहीं। पाप से डरते हैं, शत्रु से नहीं। याचकों को ढूँढ़ते हैं, धन को नहीं—यही महात्माओं का स्वभाव है।

११०३. यह मेरा या दूसरे का है—यह छोटे विचार वालों की बात है। उदार व्यक्तियों के लिए तो सारी पृथ्वी ही कुटुम्ब है।

११०४. अच्छे गुणों से अलंकृत काव्य में खल दोष ढूंढ़ते हैं, जैसे ऊँट पुष्प और फल से समायुक्त वन में काँटे ढूँढ़ते हैं।

११०५. निर्गुण होने पर भी आश्रय लिए हुए अनुरक्त को सज्जन छोड़ते नहीं। साथ ही बढ़ने और घटने वाले कलंक को चन्द्र लिए रहता है।

११०६. केवल मूर्ख ही अनुचित स्थान में किसी वस्तु के लिए आग्रह करता है। बच्चे को छोड़कर और कौन पानी में चन्द्रबिम्ब पकड़ने की इच्छा करता है?

११०७. पीताम्बराय तनयां प्रददौ पयोधिः
तत्कालकूटगरलं च दिगम्बराय।
तत्रानयोर्वदत कस्य गुणातिरेकः
प्रायः परिच्छदकृतादर एव लोकः॥

११०८. येनैवाम्बरखण्डेन दिवा संचरते रविः।
तेनैव निशि शीतांशुरहो दौर्गत्यमेतयोः॥

११०९. कामं वनेषु हरिणास्तृणेन जीवन्त्ययत्नसुलभेन।
विदधति धनिषु न दैन्यं ते किल पशवो वयं सुधियः॥

१११०. लभन्ते कथमुत्थानमस्थानं गुणिनो गताः।
दृष्टः किं क्वापि केनापि कर्दमात्कन्दुकोद्गमः॥

११०७. पीत वस्त्रधारी विष्णु को तो समुद्र ने अपनी कन्या लक्ष्मी प्रदान की पर दिगम्बर शिव के लिए कालकूट विष दिया। इन दोनों में किसका गुण अधिक है, तुम्हीं बताओ। प्रायः संसार वस्त्र का ही आदर करता है।

११०८. जिस अम्बर खण्ड (कपड़े के टुकड़े) से दिन में सूर्य काम चलाता है, उसी से रात में चन्द्र काम चलाता है। इनकी भी क्या दुर्गति है।

११०९. अनायास ही पाये हुए तृण से वन में हरिण जीवन बिताते हैं। किसी धनी के सामने दुखड़ा नहीं रोते। फिर वे तो पशु हैं और हम लोग जो सुधी हैं!

१११०. अनुचित स्थान में गये हुए गुणी जन कैसे उत्थान प्राप्त करेंगे? क्या कहीं किसी ने कीचड़ से कन्दुक को ऊपर उछलते देखा है?

११११. उपैति क्षाराब्धिं सहति बहुवातव्यतिकरम्,
पुरो नानाभङ्गाननुभवति पश्यैष जलदः।
कथं चिल्लब्धानि प्रवितरति तोयानि जगते,
गुणं वा दोषं वा गणयति न दानव्यसनिता ॥

१११२. शुक्लीकरोति मलिनानि दिगन्तराणि
चन्द्रो न शुक्लयति चात्मगतं कलङ्कम्।
नित्यं परार्थघटनाहितमानसानां
स्वार्थोद्यमो भवति नो महतां कदाचित् ॥

१११३. मूर्धेन्दुः परमेश्वरेण विधृतो वक्रो जडात्मा क्षयी
कर्णान्ते च परापकारचतुरो न्यस्तो द्विजिह्वाधिपः।
नान्दी द्वारि बहिष्कृतो गुणनिधिः कष्टं किमत्रोच्यताम्,
पात्रापात्रविचारणास्वनिपुणः प्रायो भवेदीश्वरः ॥

१११४. कुहकचकितो लोकः सत्येऽप्यपायमवेक्षते।

११११. यह बादल खारे पानी के पास जाता है, झंझावात के थपेड़ों को सहता है। फिर अनेकों भङ्गों का अनुभव करता है। फिर जो पानी किसी-किसी प्रकार पाया तो संसार के लिए वितरण कर देता है। दान की व्यसनशीलता गुण या दोष नहीं गिनती।

१११२. चन्द्रमा मलिन दिशाओं को निर्मल कर देता है। पर अपने कलंक को साफ नहीं कर देता। महापुरुष परोपकार में मन लगाये रहते हैं। कभी स्वार्थ के लिए श्रम नहीं करते।

१११३. शिव के द्वारा सिर पर वक्र, जडात्मा और क्षयी चन्द्रमा रखा गया। कान के पास परापकार में चतुर नागराज प्रतिष्ठित किया गया। गुणोत्तम नन्दी बाहर करके द्वार पर बैठाया गया। कष्ट की बात है, क्या कहा जाय ? पात्र और अपात्र के विचार में प्रायः ईश्वर निपुण नहीं होते।

१११४. धोखे से विस्मित लोग सत्य में भी हानि देखते हैं।

११९५. यद्यपि का नो हानिः परकीयां चरति रासभो द्राक्षाम्।
असमञ्जसमिति मत्वा तथापि परितप्यते चेतः॥

१११६. क्वापि कस्य च कुतोऽपि कारणात्
चित्तवृत्तिरिह किं गुणागुणैः।
उन्नतं यदवधीर्य भूधरं
नीचमब्धिमभियासि जाह्नवी॥

१११७. विद्यते स न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः।

पुरुषपरीक्षा

१११८. तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं कृतकृत्यासि साम्प्रतम्।
अनन्तनाम यद्रूपं तत्त्वया वामनीकृतम्॥

१११९. वीरः सुधीः सुविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः॥ १.४

११२०. सिंहाः सत्पुरुषाश्चैव निजदर्पोपजीविनः॥ ३.२

१११५. दूसरे के दाख को यदि गधा चरे तो कोई हानि अपनी नहीं होती। फिर भी यह ठीक नहीं—यह मानकर चित्त सन्तप्त हो जाता है।

१११६. कहीं भी किसी कारण से यहाँ यह चित्तवत्ति है—गुण और दोष से क्या जब ऊँचे पर्वत को छोड़कर नीचे समुद्र की ओर गंगा जाती है।

१११७. कोई उपाय ऐसा नहीं है, जो सभी लोगों के परितोष के लिए हो।

१११८. हे तृष्णा देवि, तुम्हें नमस्कार। तुम अब कृतकृत्य हो। जो विष्णु अनन्त रूप वाला, है, वह भी तुम्हारे द्वारा वामन बना दिया गया।

१११९. वीर, सुधी, सुविद्य और पुरुषार्थी ही पुरुष हैं। उनके अतिरिक्त लोग केवल पुरुषाकार पशु हैं, वे भी पुंछ रहित।

११२०. सिंह और सत्पुरुष अपने दर्प का अवलम्बन लेकर जीते हैं।

११२१. वस्तुदोषमनादृत्य गुणान् चिन्वन्ति तद्विदः।
अपि कण्टकिनः पुष्पे गन्धं जिघ्रन्ति षट्पदाः।। ९.४

११२२. धिया विहीनो नहि याति धन्यताम्।। १३.६

११२३. उत्तमं हि धनं विद्या दीयमानं न हीयते। १५.३

११२४. विद्या नाटकसंज्ञिका भगवती विश्वोपकारक्षमा। २१.६

११२५. मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम्।
मुखस्य भूषणं पुंसः स्यादेकैव सरस्वती।। २६.३

११२६. परप्राणपरित्राणात्परो धर्मो न विद्यते। २९.२

गान्धि-सूत्राणि

११२७. सत्यस्वरूपः सर्वेश्वरः। ४

११२८. प्रेमैव परं रूपमहिंसायाः। २१

११२९. हिंसापि क्लैब्यात् श्रेयसी। २७

११२१. किसी वस्तु के दोष का ध्यान न करते हुए विद्वान् उनके गुणों को ग्रहण कर लेते हैं। भौंरा काँटे वाले पौधे के गन्ध का उपयोग कर लेता है।

११२२. बुद्धिहीन धन्य नहीं होता।

११२३. विद्या उत्तम धन है। देने पर कम नहीं होती।

११२४. नाटक नामक विद्या भगवती सबका उपकार करने में समर्थ है।

११२५. झूठ ही लोग कहते हैं कि पान मुख का भूषण है। पुरुष के मुख का भूषण एक सरस्वती ही है।

११२६. दूसरे के प्राण की रक्षा से बढ़कर धर्म नहीं है।

११२७. सर्वेश्वर सत्य-स्वरूप है।

११२८. प्रेम ही अहिंसा का परम रूप है।

११२९. नपुंसकता से तो हिंसा ही अच्छी है।

११३०. यावद्दुःखं सहते तावदुपकरोति। ३१

११३१. उद्वाहोऽपि प्रजार्थं न तु कामोपभोगाय। ३८

११३२. धनस्य संचयो हि दुरितस्य संचयः। ३९

११३३. सर्वदा सर्वत्र सेवितव्यो दरिद्रनारायणः। ४०

११३४. माननीयाः खलु कृषीवलाः। ४१

११३५. तन्तुचक्रं हि मूलाधारम्। ४४

११३६. ग्रामाभ्युदयादेव देशाभ्युदयः। ४६

११३७. सत्यं शीलं दमस्स्थैर्यं निर्भयत्वं च नम्रता।
ऐकमत्यं शमस्त्यागस्सहिष्णोस्सहजा गुणाः ॥ ७६

११३८. धर्मात्मा राजनीतिषु धर्ममेवाचरति। ८४

११३९. सत्याग्रह एव शस्त्रं भारतीयानाम्। १०४

११४०. सत्ययुगं शनैरभ्येति जगत्सर्वम्। १०६

११३०. जब तक दुःख सहता है, तब तक उपकार करता है।

११३१. विवाह भी सन्तान के लिए है, कामोपभोग के लिए नहीं।

११३२. धन का संचय पाप का संचय है।

११३३. सदा सर्वत्र ही दरिद्र के रूप में नारायण की सेवा करो।

११३४. किसान आदरणीय हैं।

११३५. चर्खा ही (ग्रामोन्नति) का मूलाधार है।

११३६. गाँवों के अभ्युदय से ही देश का अभ्युदय है।

११३७. सत्य, शील, दम, स्थिरता, निर्भयता, नम्रता, एकमति, शम और त्याग सहिष्णु के सहज गुण हैं।

११३८. धर्मात्मा राजनीति में धर्म का आचरण रखता है।

११३९. सत्याग्रह ही भारतवासियों का शस्त्र है।

११४०. धीरे-धीरे सारे संसार में सत्य का युग होगा।

११४१. तन्मार्गदर्शि भारतवर्षम्। १०७
११४२. दिक्कालाद्यनवच्छिन्नस्सनातनोऽयं धर्मः।

भारतपारिजातम्

११४३. मूले लब्धफलः को वा प्रारोहति तरोः शिरः। ४०.६
११४४. स्वार्थस्य राज्ये प्रसृते विचिन्तनं
हानेः परार्थस्य न कुर्वते जनाः। ५.४४
११४५. निर्व्याजतायाः परिपोषणेऽपि
भाव्यं सदा धीरतयाऽप्रमत्तैः। ६.९
११४६. अस्मिन्युगे यन्त्रगतिप्रचारे
प्रायेण सारल्यमितो विनष्टम्। ६.१०
११४७. न यत्र वृत्तिः खलु धार्मिकी स्यात्
कार्ये च तस्मिन्नहि सिद्धिरस्ति। ६.१७
११४८. दैवेन संवर्धितगौरवस्य तदेव रक्षां सततं करोति।

११४१. सत्ययुग का मार्ग दिखाने वाला भारत है।
११४२. यह सनातन धर्म दिशा, काल आदि से सीमित नहीं है।
११४३. जड़ में ही फल पाने वाला कौन वृक्ष की चोटी पर चढ़ता है।
११४४. स्वार्थ का राज्य फैलने पर लोग दूसरे की हानि की चिन्ता नहीं करते।
११४५. निष्कपटता के पालन में भी सदा धैर्यपूर्वक सावधान रहना चाहिए।
११४६. इस यन्त्र के प्रचलन के युग में प्रायः सरलता यहाँ से नष्ट हो गई है।
११४७. जिस काम में धार्मिक वृत्ति न हो, उसमें सिद्धि नहीं होती।
११४८. दैव जिसके गौरव को बढ़ाता है, वह सदैव उसकी रक्षा भी करता है।

११४९. समयं मतिमानुपस्थितं ह्युपयुंक्ते न च कः समृद्धये। ७.५५

११५०. यः स्वात्मशक्तिमनुसृत्य युधं विधत्ते।
स्यादेव तस्य नितरां विजयो महीयान् ८.३४

११५१. सत्यं निवारयति सर्वसुखप्रतीपम्। ८.३७

११५२. शान्तिप्रिया भारतवासितुल्याः
प्रजा पृथिव्यां न हि सम्भवेयुः। ९.२३

११५३. आत्मप्रतीतिः दृढता विरक्तिः
इति त्रयं स्वात्मनि यो दधीत।
नेता स एवास्ति समस्तशिष्ट-
गुणाश्रयत्वान्निखिलप्रजानाम् १२.३५

११५४. प्राणाधिकं गौरवमेव हृद्यम्। १२.३९

११५५. एतावतैव कार्येण मन्यध्वं नो कृतार्थताम्।
कर्तव्यानां परा काष्ठा नेदानीं विद्यते खलु॥ १४.२०

११४९. उपस्थित समय का कौन बुद्धिमान् अपनी समृद्धि के लिए उपयोग नहीं करता।

११५०. जो अपनी आत्मिक शक्ति का अनुसरण करके युद्ध करता है, उसको महान् विजय अवश्य मिलती है।

११५१. सत्य सुख के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करता है।

११५२. भारतवासियों की भाँति शान्तिप्रिय प्रजा पृथिवी में नहीं सम्भव है।

११५३. आत्मविश्वास, दृढता, विराग—ये तीन गुण जो पुरुष अपने में रखता हो, वही सभी उदात्तगुणों का आश्रय होने के कारण सारी प्रजा का नेता है।

११५४. गौरव ही प्राण से बढ़कर मनोरम है।

११५५. इतने ही काम से अपने को कृतार्थ न समझो। कर्तव्यों की अन्तिम सीमा अब कहाँ रही?

११५६. परं तु परमैः स्वेष्टं विना दुःखैर्न चाप्यते। २०.९७

११५७. क्षुधितजनसुखायागम्य एष प्रदेशः।
किमपि किमपि पुण्यं कार्यमेवात्र भूमौ॥ १२.२१

११५८. भेदभावो विपत्तीनां सदा सद्भाववर्धकः।
तस्मात्तस्य विनाशः स्याच्छान्तिलाभाय सर्वथा॥ २४.४८

लौकिकन्यायाञ्जलिः

११५९. अकाले कृतमकृतं स्यात्।

११६०. अंगुल्यग्रे हस्तियूथमास्ते

११६१. अन्तरंगबहिरंगयोरन्तरंगं बलीयः।

११६२. अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत्।

११६३. अभ्यर्हितं पूर्वम्।

११५६. अपना उच्च अभीष्ट अत्यधिक दुःख उठाये बिना नहीं मिलता।

११५७. इस देश में भूखों को सुख देने के लिए ही आना चाहिए। यहाँ कुछ न कुछ पुण्य करना चाहिए।

११५८. भेदभाव विपत्तियों की सत्ता को सदा बढ़ाता है। इसीलिए भेदभाव का विनाश शान्तिलाभ के लिए पूर्णरूप से होना चाहिए।

११५९. असमय में किया हुआ न किया हुआ ही है।

११६०. नख पर हजार हाथी बैठे।

११६१. अन्तरंग और बहिरंग में अन्तरंग अधिक बलवान् है।

११६२. अभिप्राय समझ में न आये तो शास्त्र की बात सोचो।

११६३. आदरणीय को पहले रखें।

११६४. अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि ग्रावाणः प्लवन्ते।

११६५. एकदेशविकृतमनन्यवत्।

११६६. किं चक्षुषा ममैतेन दृष्टं दीपेन यन्मया।

११६७. ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्तकम्।

११६८. तत्स्थानापन्ने तद्धर्मलाभः।

११६९. तप्तं तप्तेन सम्बध्यते।

११७०. नहि करकंकणदर्शनायादर्शापेक्षा।

११७१. नहि काकिन्यां नष्टायां तदन्वेषणं कार्षापणेन क्रियते।

११७२. नहि गोधा सर्पन्ती सर्पणादहिर्भवति।

११७३. भिक्षुको भिक्षुकान्तरं याचितुमर्हति सत्यन्यस्मिन्नभिक्षुके।

११७४. नहि विधिशतेनापि तथा पुरुषः प्रवर्तते यथा लोभेन।

११६४. पानी में लौकी डूबती है और पत्थर तैरता है।

११६५. एक भाग के विकृत होने पर वस्तु बदल नहीं जाती।

११६६. मुझे इस आँख से क्या, जब दीपक से ही देखा गया?

११६७. ज्ञान केवल अज्ञान को ही दूर करता है।

११६८. जिसका स्थान लिया जाता है, उसका उत्तरदायित्व भी लिया जाता है।

११६९. दो तपी हुई वस्तुयें ही परस्पर जुटती हैं।

११७०. हाथ कंगन को आरसी क्या?

११७१. कौड़ी गुम होने पर उसे खोजने के लिए रुपये नहीं लगाते।

११७२. रेंगनेवाली गोह सर्पण मात्र से साँप नहीं बन जाती।

११७३. कोई भिक्षुक दूसरे भिक्षुक से तब तक याचना नहीं करता, जब तक कोई दूसरा अभिक्षुक वहाँ हो।

११७४. सैकड़ों आज्ञाओं से मनुष्य काम में उतनी तत्परता से नहीं जुटता, जितना लोभ से।

११७५. नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुंमन्येन शक्यते।
११७६. न ह्यन्धस्याज्यावेक्षणोपेते कर्मण्यधिकारोऽस्ति।
११७७. निरामयस्य किमायुर्वेदविदः।
११७८. पश्यस्यद्रौ ज्वलदग्निं न पुनः पादयोरधः।
११७९. पाटनमन्तरेण विषव्रणानां नोपशान्तिः।
११८०. प्रत्यक्षे किमनुमानेन ?
११८१. प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।
११८२. बालस्य प्रदीपकलिकाक्रीडयैव नगरदाहः।
११८३. मधु पश्यसि दुर्बुद्धे प्रपातं नानुपश्यसि।
११८४. य एव करोति स एव भुंक्ते।
११८५. यत्करभस्य पृष्ठे न माति तत्कण्ठे निबध्यते।

११७५. जो शक्ति स्वयं अपने में नहीं, उसे दूसरा कहाँ से दे सकता है ?
११७६. अन्धे से मक्खन की परीक्षा नहीं कराते
११७७. नीरोग को वैद्यराज से क्या लेना देना ?
११७८. पर्वत पर जलती आग देखते हो किन्तु पैर के नीचे की नहीं देखते।
११७९. विषैले घाव को चीरने से ही शान्ति होती है।
११८०. वस्तु के सामने होने पर अनुमान से क्या ?
११८१. बिना प्रयोजन के मूर्ख भी किसी काम में हाथ नहीं लगाता।
११८२. लड़के के दीप-बत्ती के खेल से ही नगर जल गया।
११८३. मूर्ख, मधु तो देखते हो, पर उसके लिए आवश्यक प्रपात को नहीं देखते हो।
११८४. जो करता है, वही भोगता है।
११८५. जो ऊँट की पीठ पर नहीं लद पाता, उसे उसके कण्ठ में बाँध देते हैं।

११८६. यत्राकृतिस्तत्र गुणाः।
११८७. यस्य नास्ति पुत्रो न तस्य पुत्रस्य क्रीडनानि क्रीयन्ते।
११८८. रोहणाचललाभे रत्नसम्पदः सम्पन्नाः।
११८९. विषकुम्भं पयोमुखम्।
११९०. श्वः कार्यमद्य कुर्वीत
११९१. श्वा कर्णे वा पुच्छे वा छिन्ने श्वैव भवति नाश्वो न गर्दभः।
११९२. सर्वं बलवतः पथ्यम्।
११९३. अनिषिद्धमनुमतम्।
११९४. इतो व्याघ्र इतस्तटी।
११९५. क्वोष्ट्रः क्व च नीराजना।
११९६. दत्तमेकधा सहस्रगुणमुपलभ्यते।
११९७. महति दर्पणे महन्मुखं तदेवकनीनिकायामणु।

११८६. स्वरूपवान् सच्चरित्र होता है।
११८७. जिसके पुत्र ही नहीं, वह पुत्र से कहाँ से खेलेगा ?
११८८. रोहण पर्वत पर चढ़ने से ही रत्न-सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है।
११८९. पूरे घड़े में तो विष है, केवल उसके मुख भाग में दूध है।
११९०. कल का काम आज करो।
११९१. कान या पूँछ काट देने पर भी कुत्ता तो कुत्ता ही रह जाता है घोड़ा या गदहा नहीं बन जाता।
११९२. बलवान् के लिए सब कुछ पथ्य ही है।
११९३. रोका नहीं तो मान ही लिया।
११९४. एक ओर बाघ और दूसरी ओर प्रपात।
११९५. कहाँ ऊँट और कहाँ नीराजना।
११९६. एक लगाये सहस्र-गुना पाये।

११९७. बड़े दर्पण में बड़ा मुँह, वही कनीनिका में छोटा होता है।

११९८. मुनिर्मनुते मूर्खो मुच्यते।

११९९. अस्त्रमस्त्रेण शाम्यति।

१२००. सर्वं सुखं स्वस्मिन्नेव वर्तते।

१२०१. परिग्रह एव संसृतिमोक्षयोरन्तरम्।

११९८. मुनि ध्यान लगाये, मूर्ख मुक्ति पाये।

११९९. अस्त्र को अस्त्र ही शान्त करता है।

१२००. अपने में ही सभी सुख है।

१२०१. परिग्रह ही मोक्ष और आवागमन के बीच का पहाड़ है।

कविप्रशंसा

व्यासः

१२०२. नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥

१२०३. श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान् भारताख्यममृतं यः।
तमहमरागमतृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे॥

१२०४. अभ्रश्यामः पिङ्गजटाबद्धकलापः
प्रांशुर्दण्डी कृष्णमृगत्वक्परिधानः।
साक्षाल्लोकान् पावयमानः कविमुख्यः
पाराशर्यः पर्वसुरूपं विवृणोतु॥

वाल्मीकिः

१२०५. वाल्मीकि-कविसिंहस्य कविता वनचारिणः।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परं पदम्॥

१२०२. उस सर्वज्ञ कवि-ब्रह्म व्यास को नमस्कार, जिसने भारत को अपनी वाणी से वैसे ही पुण्यशाली बना दिया, जैसे ब्रह्मा ने सरस्वती से।

१२०३. जिसने महाभारत रूपी अमृत को श्रवणाञ्जलि से पीने योग्य बनाया, उस राग और तृष्णा से रहित कृष्णद्वैपायन की वन्दना करता हूँ।

१२०४. बादल के समान नीले, पीली जटाओं की बद्ध शिखावाले, ऊँचे, दण्डी, कृष्ण मृगचर्म धारण करनेवाले, श्रेष्ठ कवि, लोकों को सीधे पवित्र कर देनेवाले व्यास महाभारतीय कथा का विस्तार करें।

१२०५. वन में विचरण करनेवाले कविसिंह वाल्मीकि की रामकथा के गायन को सुनता हुआ कौन परम पद को नहीं प्राप्त कर लेता?

१२०६. योगीन्द्रश्छन्दसां स्रष्टा रामायणमहाकविः।
वल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो मुनिः॥
१२०७. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥
१२०८. आदिकवी चतुरास्यौ कमलजवल्मीकजौ वन्दे।
लोकश्लोकविधात्रोर्ययोर्भिदा लेशमात्रेण॥
१२०९. विहितघनालङ्कारं विचित्रवर्णावलीमयस्फुरणम्।
शक्रायुधमिव वक्रं वल्मीकि-भुवं वन्दे॥
१२१०. कूजन्तं राम-रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम्॥

१२०६. योगीन्द्र, छंदों के निर्माता, रामायण के कवि वाल्मीकि प्राच्य-प्राचेतस मुनि विजयी हों।

१२०७. लौकिक साधुओं की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है अर्थात जैसा होना होता है, वैसा वे पहले से ही वता देते हैं। किन्तु आदिकवि की वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। अर्थात् जैसा वे कह देते हैं, वैसा होकर रहता है।

१२०८. आदि कवि और ब्रह्मा क्रमशः कमल और वल्मीक से उत्पन्न हुए। इनकी वन्दना करता हूँ। इन दोनों में अन्तर थोड़ा ही है—एक ने लोक बनाये और दूसरे ने श्लोक।

१२०९. घने अलंकार से प्रतिष्ठित, विचित्र वर्णों के प्रयोग से चमत्कारपूर्ण श्रेष्ठ वाल्मीकि की वन्दना करता हूँ। वे उस इन्द्र-धनुष के समान हैं, जो बादलों से अलंकृत होता है और चित्र-विचित्र रंगों की राशि से स्फुरणशील होता है।

१२१०. राम-राम इस प्रकार मधुर अक्षरों का मीठा कूजन करनेवाले कविता-शाखा पर आरूढ वाल्मीकि-रूपी कोकिल की वन्दना करता हूँ।

भासः

१२११. नाटकाविष्क्रियाकारी नानाकौतुकदर्शकः
गद्य-पद्य-निबन्धश्रीः भासा भासस्य भासते ॥

१२१२. भास-नाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

१२१३. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव ॥

१२१४. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ॥

१२१५. सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्त-लक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

१२११. भास नाटक के आविष्कारक हैं और वहुविध कौतुकों को दरसानेवाले हैं। गद्य और पद्य रचना की शोभा भास की चमक से खिल उठी है।

१२१२. कुशल आलोचकों के द्वारा भास के नाटक-समुदाय की परीक्षा करने के लिए डाले जाने पर अग्नि ने भी स्वप्न वासवदत्ता को नहीं जलाया

१२१३. भास के नाटक का समारम्भ सूत्रधार से होता है, उनकी भूमिकायें बड़ी हैं, उनमें पताका का प्रयोग हुआ है ऐसे नाटकों से भास को वैसे ही सुयश प्राप्त हुआ, जैसे देवकुल (मन्दिरों) के द्वारा, जिनका आरम्भ सूत्रधार (स्थपति) करता है, जिनकी भूमिका (आधार-भूमि) विशाल होती है और जिनमें पतकायें लगी होती हैं।

१२१४. जिस कवितारूपी रमणी के भास हास हैं, कविकुल-गुरु कालिदास विलास हैं, वह किनके हृदय में आनन्द नहीं उत्पन्न करेगी ?

१२१५. मुखादि संधियोंमें विभक्त, कैशिकी आदि वृत्तियों से प्रस्फुटित नाटकों के द्वारा मृत भास वैसे ही वर्तमान हैं जैसे अपने शरीर से, जिसमें मुखादि अंग होते हैं और शोभन लक्षणवाली वृत्तियाँ होती हैं।

कालिदासः

१२१६. वाल्मीकिमिव सभासं यशःशरीरेण सर्वदा सन्तम्।
रसवद्वचनविकासं नमत कविं कालिदासं तम्॥
१२१७. निर्गतामलवाक्यस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥
१२१८. पुरा कवीनां गणना-प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥
१२१९. कालिदास-गिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥
१२२०. ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः
शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्र—
सिन्धोः परंपारमवाप कीर्तिः॥

१२१६. उस कविवर कालिदास को नमस्कार, जो वाल्मीकि के समान प्रतिभा-सम्पन्न हैं, अपने यशःशरीर से अमर हैं और रसमयी वाणी का विलास सर्जन करते हैं।
१२१७. निर्मल वाणी-विलासवाले कालिदास की सूक्तियों में वैसा ही आनन्द मिलता है, जैसा मधु-रस से परिप्लुत मंजरी में।
१२१८. पहले कवियों की गणना करते समय छोटी अँगुली पर कालिदास का नाम पड़ा। फिर दूसरी अंगुली पर कौन हो—उस कालिदास के समकक्ष बैठनेवाला कोई दूसरा न होने से कनिष्ठिका के पास-वाली अंगुली का सार्थक नाम आज भी अनामिका है।
१२१९. कालिदास की वाणी के अभिप्राय को कालिदास, सरस्वती और ब्रह्मा ही जान सके हैं। मेरे समान दूसरे पाठक नहीं।
१२२०. धन्य हैं वे महाकवि कालिदास, जिनकी कीर्ति उनकी कविता के समान निर्दोष, अमृत के समान और स्वादिष्ठ है। उनकी वाणी ने सूर्यवंश का वर्णन ही पूरा किया, और कीर्ति ने समुद्र पार करने का काम पूरा किया।

भारविः

१२२१. जिगाय विस्फूर्तिमती यदीया प्रतिभा रविम्।
सन्महे कविरत्नं तं वयं सम्प्रति भारविम्।।

१२२२. प्रकाशं सर्वतो दिव्यं विदधाना सतां मुदे।
प्रबोधनपरा हृद्या भारवेरिव भारवेः।।

१२२३. प्रदेश-वृत्त्यापि महान्तमर्थं
प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव
रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या ।।

१२२४. वृत्तच्छत्रस्य सा काऽपि वंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ।।

१२२५. नारिकेलफल सम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ।।

१२२१. जिसकी स्फुरणशील प्रतिभा ने रवि को जीत लिया है, उस कविरत्न को हम भारवि मान बैठे हैं।

१२२२. भारवि की काव्य-चारुता सज्जनों के प्रमोद के लिए सर्वत्र दिव्य प्रकाश करती हुई ज्ञान-प्रदायिनी और मनोरम है, वैसे ही जैसे सूर्य की प्रभा।

१२२३. भारवि की रमणीय रचना थोड़े में ही अतिशय भाव का प्रदर्शन करती हुई रस का आधान करती हुई सन्मार्ग को बतानेवाले दीपक की भाँति है। कौन उसको आदर्श-रूप में नहीं ग्रहण करता ?

१२२४. शोभन छत्र के समान निष्पन्न वंशस्थ छन्द की अनूठी विचित्रता होती है, जिसकी रमणीयता से भारवि की प्रतिभा उसी प्रकार संवर्धित हुई है, जैसे छाते की शोभामयी कान्ति से सूर्य की चमक।

१२२५. भारवि की वाणी नारियल के फल के समान मानी गई है। यदि उसकी व्याख्या हो गई तो वह वैसे ही आभ्यन्तर रस से परिपूर्ण होकर रसिकों के द्वारा आस्वाद्य है, जैसे तोड़ दिये जाने पर नारियल का फल।

१२२६. प्रकृति-मधुरा भारवि-गिरः॥

१२२७. तादात्म्यं भावरसयोर्भारविः स्पष्टमूचिवान्॥

बाणः

१२२८. हृदिलग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कवि-कुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥

१२२९. सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरी-कथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ॥

१२३०. जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकं प्राप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥

१२२६. भारवि की वाणी स्वभावतः मधुर है।

१२२७. भारवि ने भाव और रस के तादात्म्य को स्पष्ट ही व्यक्त किया है।

१२२८. जिस प्रकार बाण से बींधे हुए मर्म स्थलवाले हरिण धीरे-धीरे चलते ही रहते हैं, वैसे ही हृदय में महाकवि बाण के आसक्त होने पर भी कवि कुछ-कुछ पद्य रचना करते ही रहते हैं, इसमें हरिणों की भाँति कवियों की चपलता ही कारण है।

१२२९. हर्षचरित से आरम्भ हुई, अद्भुत कादम्बरी-कथा से भूषित बाण की वाणी असती रमणी की भाँति स्वच्छन्दता से पृथ्वी-भ्रमण करती है।

१२३०. पहले जैसे शिखण्डिनी शिखण्डी हो गई, वैसे ही मैं समझता हूँ, वाणी बाण हो गई, जिससे अधिक प्रगल्भता प्राप्त कर सके।

१२३१. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलङ्कारे कतिचित् सदर्थ-विषये चान्ये कथा-वर्णने ॥
आः सर्वत्र गभीरधीरकविता विन्ध्याटवी-चातुरी
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरोबाणस्तुपञ्चाननः ॥

१२३२. वीणा-पाणि परामृष्टवीणानिक्वाण-हारिणीम् ।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥

१२३३. रुचिर-स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत् किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

१२३४. वागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्द--
मर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं
बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥

१२३१. कुछ कवि श्लेष, कुछ शब्द-विन्यास, कुछ रस, कुछ अलंकार, कोई अच्छे अभिप्रायवाली बातों में और कुछ कथा-वर्णन में दक्ष हैं। केवल कवि-सिंह बाण है, जो कविरूपी हाथी के मस्तक को छिन्न-भिन्न करके सर्वत्र गम्भीर-धीर कवितारूपी विन्ध्य-वन-कौशल में संचरण करनेवाला है।

१२३२. सरस्वती के हाथ से निनादित वीणा के गान-माधुर्य से बढ़कर भट्ट बाण की भारती को कैसे अन्य रसिक समझ सकते हैं ?

१२३३. रुचिर स्वर, वर्ण और पदवाली, रस और भाव से समायुक्त (वह) संसार के लोगों का मन हरती है। तो वह क्या कोई स्त्री है ? नहीं, नहीं माधुर्यगुण-प्रवण बाण की वह वाणी है।

१२३४. मैं वागीश्वर कवि अभिनन्द का अभिनन्दन करता हूँ, अर्थेश्वर कवि वाक्पतिराज की स्तुति करता हूँ, और रसेश्वर कवि कालिदास की प्रशस्ति करता हूँ। प्रणाम करता हूँ, सर्वेश्वर कवि बाण को।

१२३५. प्रतिकविभेदन-बाणः कवितातरुगहनविहरण-मयूरः।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाण-कविराजः॥

१२३६. बाणं, सत्कवि-गीर्वाणमनुबन्धाति कः कविः।
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति द्युमणिं कतमो मणिः॥

१२३७. दण्डीत्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पितं मनः।
प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते॥

१२३८. हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत्॥
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टंकिता कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्‌ मन्ये परिम्लानताम्॥

१२३९. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्
किं पुनः क्लृप्तसन्धान-पुलिन्द-कृत-सन्निधिः॥

१२३५. प्रतिस्पर्धा करने वाले कवि को परास्त करने में बाण के समान, काव्यारण्य में विहरण करने में मयूर के समान, रसिक लोगों के सुबन्धु वे भट्ट बाण कविराज विजयी हों।

१२३६ सत्कवियों में देवता उस बाण के आस-पास तक कौन कवि पहुँचता है? क्या कुआँ समुद्र की अथवा मणि सूर्य की समता करता है?

१२३७. कवि दण्डी के उपस्थित होने पर तत्काल कवियों का मन वैसे ही काँपता है जैसे जलधर को देखकर। बाण के भीतर प्रवेश करने पर तो वाणी कण्ठ में ही रुक जाती है।

१२३८. सोने के सैकड़ों भार और मदस्रावी हाथियों के वृन्द श्रीहर्ष ने कवि बाण के लिए समर्पित किये। वह सब अब कहाँ हैं? बाण ने सूक्ति-राशियों से जो हर्ष की कीर्ति उट्टङ्कित की वह कल्पान्त तक तनिक भी परिम्लान नहीं होगी।

१२३९. स्फुरणशील बाण अकेले ही कवियों का मद दूर कर देता है। जब शर-सन्धान में निपुण पुलिन्द का साहचर्य हो तो फिर क्या कहना?

माघः

१२४०. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः॥

१२४१. कविता-कुन्द-विकासन-कृतिने विजित-जनताऽनिदाघाय।
दलितोद्दामाघाय प्रणतिं कलयामि माघाय॥

१२४२. माघो माघ इवाशेषं क्षमः कम्पयितुं जगत्।
श्लेषामोदभरं चापि सम्भावयितुमीश्वरः॥

१२४३. कृत्स्नप्रबोधकृद् वाणी भारवेरिव भारवेः।
माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते॥

१२४४. माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा॥

१२४०. कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का पद-लालित्य ये तीनों ही गुण माघ में हैं।

१२४१. कवितारूपी कुन्द-पुष्प का सर्वोत्तम विकास करनेवाले, जनता के सन्ताप को मिटा देनेवाले और उच्छृंखल पाप का शमन करनेवाले माघ (कवि, मास) को प्रणाम करता हूँ।

१२४२. माघ कवि माघ मास की भाँति सारे संसार को कँपा देने में समर्थ हैं। ये दोनों संसार को संश्लिष्ट और आनन्दमय बना देने में भी समर्थ हैं।

१२४३. सूर्य की प्रभा के समान भारवि की वाणी सर्वज्ञता प्रदान करती है। माघ मास की भाँति माघ कवि से किसको कम्पन नहीं उत्पन्न होता?

१२४४. जिस प्रकार माघ मास की ठंडक से पीड़ित वानर दुबक कर बैठ रहते हैं और केवल सूर्य की प्रभा का ध्यान मात्र करते हैं, उसी प्रकार कवि लोग माघ कवि की प्रतिभा के कारण उत्साह छोड़कर पद रचना करने से विरत हो जाते हैं और भारवि का केवल ध्यान करते हैं।

१२४५. तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव॥

१२४६. माघे मेघे गतं वयः।

१२४७. नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

भवभूतिः

१२४८. भव्यां यदि विभूतिं त्वं तात कामयसे तदा।
भवभूतिपदे चित्तमविलम्बं निवेशय॥

१२४९. सुकविद्वितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्तु तृतीयकः॥

१२४५. सूर्य की किरणें तभी तक प्रभान्वित रहती हैं, जब तक माघ मास नहीं आता। वैसे ही भारवि की प्रतिभा तभी तक समादरणीय रही, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ। जिस प्रकार माघ मास में सूर्य की किरणें हतप्रभ होती हैं, वैसे ही माघ कवि के उदय होने पर भारवि हतप्रभ हैं।

१२४६. शिशुपाल-वध और मेघदूत के पढ़ते-पढ़ते आयु बीत गई।

१२४७. शिशुपाल-वध का नव सर्ग पढ़ा लिया तो फिर नये शब्द (साहित्य) में न मिलेंगे।

१२४८. यदि आप शोभन ऐश्वर्य की कामना करते हैं तो तत्काल ही कविवर भवभूति के काव्य-पदों का ध्यान करें अथवा शिव का ध्यान करें।

१२४९. पूरे जगत् में दो ही सुकवि हैं—भवभूति और शुकदेव। तीसरे स्थान पर वाल्मीकि आते हैं।

१२५०. भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृत-कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

१२५१. स्पष्टभावरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना॥

१२५२. भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥

१२५३. मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः।
वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा जनः कवीनामनुपृष्ठमेति॥

१२५४. उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते॥

१२५०. भवभूति का सम्बन्ध होने से भारती (वाणी) पर्वतप्रस्थ की भाँति सुशोभित होती है। अन्यथा भारती के द्वारा कारुण्य की अभिव्यक्ति किये जाने पर पत्थर क्यों रोने लगते?

१२५१. भवभूति के द्वारा नाटकों में स्पष्ट भाव-रसमयी वाणी चित्र-विचित्र पदों के प्रयोग से वैसे ही संचारित की गई है, जैसे नटी भाव और रसों से सम्पन्न होकर अपने विचित्र पद-संचार से मन मोह लेती है।

१२५२. भवभूति की रमणीय शिखरिणी (छंद) महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के वर्णन में मयूरी की भाँति नाच उठती है, जैसे अजस्र स्रोतस्विनी बादलों के बरसने पर।

१२५३. सारस्वत मार्ग पर जगत् में भवभूति सम्मानित सार्थवाह हैं, जिसकी वाणीरूपी पताका को देखकर कवि-लोक पीछे-पीछे चलता है।

१२५४. उत्तररामचरित में भवभूति सर्वोत्तम है।

श्रीहर्षः

१२५५. ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्
यः साक्षात् कुरुते समाधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्॥

१२५६. कविषु दधतमुत्कर्षं विस्फुरदनवद्यहृद्य-वाग्वर्षम्।
इह खलु खलप्रधर्षं श्री हर्षं नौमि हर्षसंघर्षम्॥

१२५७. अमोघ-चिन्तामणि-मन्त्रसिद्धि-प्राप्तप्रभावं प्रथितप्रतापम्।
समस्तशास्त्रप्रतिबुद्धविद्यं श्रीहर्षमेकं विबुधं प्रतीमः॥

१२५८. नैषधं विद्वदौषधम्॥

१२५५. जो कान्यकुब्ज देश के राजा से पान का बीड़ा और आसन प्राप्त करते थे, जो समाधि लगा लेने पर ब्रह्ममय आनन्द-सागर की अनुभूति करते थे, जिसका काव्य माधुर्य की वर्षा करता है, जिसकी उक्तियाँ तर्क के समय प्रतिवादी को परास्त कर ही देती हैं, उस श्रीहर्ष कवि की यह कृति विद्वानों को आनन्द प्रदान करने के लिए समुदित हो।

१२५६. मैं उस श्रीहर्ष महाकवि को प्रणाम करता हूँ, जो कवियों की श्रेणी में सर्वोत्कृष्ट है, जिनकी काव्य-रचना स्पन्दनशील, निर्दोष और मनोरम है तथा जो दुष्टों का प्रधर्षण करने वाले हैं।

१२५७. मैं तो केवल श्रीहर्ष को ही विद्वान् मानता हूँ, जिनका अमोघ चिन्तामणि मंत्र की सिद्धि से प्राप्त प्रभाव से युक्त प्रताप विख्यात है और जिन्होंने सभी शास्त्रों की विद्याओं का रहस्य जान लिया है।

१२५८. नैषधीयचरित विद्वानों का औषध है।

पण्डितराज-जगन्नाथः

१२५९. जगन्नाथो जगन्नाथो भारतीरतिदैवतम्।
यत्पदोपासना सद्यो विधत्ते परमां मुदम्॥

१२६०. कवयति पण्डितराजे कवयन्त्यन्येऽपि विद्वांसः।
नृत्यति पिनाकपाणौ नृत्यन्त्यन्येऽपि भूतवेतालाः॥

१२६१. माधुर्यैरपि धुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम्।
वन्ध्यैव माधुरीयं पण्डितराजस्य कवितायाः॥

१२६२. गिरां देवी वीणागुणरणनहीनादरकरा
यदीयानां वाचाममृतमयमाचामति रसम्।
वचस्तस्याकर्ण्य श्रवणसुभगं पण्डितपते-
रधुन्वन्मूर्धानं नृपशुरथवायं पशुपतिः॥

१२५९. जगन्नाथ तो जगन्नाथ ही हैं—वाणी-विलास के देवता। इनके पदों की उपासना तत्काल सर्वोच्च आनन्द की प्राप्ति कराती है।

१२६०. पण्डितराज कविता करते हैं और अन्य विद्वान् भी कविता करते हैं। क्यों न करें? शिव के नृत्य करते समय अन्य भूत-वेताल भी तो नाचते हैं।

१२६१. अंगूर, ईख और शहद की उच्चकोटि की मिठास भी पण्डितराज की सर्वोत्कृष्ट माधुरी की तुलना में व्यर्थ है।

१२६२. सरस्वती वीणा के तारों से हाथ हटाकर जिसकी वाणी के अमृतमय रस का आचमन करती है, उस पण्डितराजकी श्रोत्र मधुर वाणी को सुनकर सिर को न धुननेवाले दो ही हैं—नृपशु (मनुष्यों में पशु) और पशुपति (शिव)।

विषय-सन्दर्भ

कविप्रशंसा